रासो साहित्य विमर्श

डॉ० माता प्रसाद गुप्त

साहित्य भवन प्रा०
इलाहाबाद

विषय सूची

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक में रासो साहित्य सम्बंधी मेरे चौदह लेख संकलित हैं। इनमें से एक 'रास और रासक काव्य-परम्पराएँ' शीर्षक नवीन है और पहली बार प्रकाशित हो रहा है, शेष तेरह पिछले दस वर्षों में प्रकाशित हो चुके हैं और संशोधित रूप में पुनः प्रकाशित किये जा रहे हैं। रासो हिंदी के प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य का एक सर्वाधिक संपन्न काव्यरूप रहा है। आशा है कि हिंदी साहित्य के प्रेमियों को इस लेख-माला से उक्त काव्यरूप तथा उसका विभिन्न समस्याओं का कुछ परिचय प्राप्त हो सकेगा।

इस पुस्तक में संकलित विभिन्न लेखों के सन्दर्भ कुछ लेखों में असावधानी से अब भी उन पत्रिकाओं के लेखों के रूप में बने रह गए हैं जिनमें वे पहले प्रकाशित हुए थे। शीर्षकों को देख कर उन्हें इस संकलन में सुगमता से ढूँढ लिया जा सकता है। सातवें लेख में पहले सन्दर्भों का एक सम्मिलित क्रम था; छपाई में पृ० ८७ से ६६ तक क्रम बदल कर एक-एक पृष्ठ का सन्दर्भ-क्रम स्वतंत्र कर दिया गया है, किन्तु लेख के शेष पृष्ठों में वह अब भी पहले का बना हुआ है। इस भूल को भी विज्ञ पाठक क्षमा करेंगे। मुद्रण की अन्य भूलें पुस्तक के अंत में दिये हुए शुद्धि-पत्र में दे दी गई हैं। उन्हें वे उसके अनुसार ठीक करने की कृपा करेंगे।

जयपुर
१-५-६२

माता प्रसाद गुप्त

राजस्थान विश्वविद्यालय

के

परम विद्यानुरागी

और

चरित्रवान्

उप कुलपति

डॉ० मोहन सिंह मेहता

को

सादर और सस्नेह

समर्पित

रासो प्रबन्ध-परम्परा की रूपरेखा

हिन्दी साहित्य के आविर्भाव के प्रारम्भ में ही हमें दो 'रासो' ग्रन्थ मिलते हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इन्हें १६वीं और १७वीं शताब्दियों का माना है, किन्तु उनका यह विचार इन रासो ग्रंथों के वर्त्तमान रूप के कारण है, और इन ग्रंथों का मूल रूप तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के बाद का न होना चाहिए। 'पृथ्वीराज रासो' के सम्बन्ध में तो इस विषय के प्रमाण भी प्राप्त हो चुके हैं। उसकी चार वाचनाएँ प्राप्त हुई हैं— वृहत्, मध्यम, लघु, और लघुतर। विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दी के जैन प्रबन्ध-संग्रहों में पृथ्वीराज और जयचन्द्र प्रबन्धों के ऐसे चार छंद दिए हुए हैं जिनमें से एक वृहत् वाचना में भी नहीं है। अतः यह मानना पड़ेगा कि लघु और लघुतर वाचनाएँ तो अवश्य ही विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व की हैं। इसी प्रकार 'बीसलदेव रासो' की भी •कई-कम से कम चार-वाचनाएँ मिलती हैं, और ये कई वाचनाएँ सत्रहवीं शताब्दी तक ही हो गई थीं, क्योंकि इनकी प्रतियाँ सत्रहवीं शताब्दी विक्रमीय की मिलती हैं। इतनी विभिन्न वाचनाएँ शीघ्र नहीं हो सकतीं— चार वाचनाओं के लिए अनुमान से दो शताब्दियाँ अपेक्षित होंगी। इसलिए 'बीसलदेव रासो' की रचना भी पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व की होनी चाहिए। मेरा अपना अनुमान है कि 'पृथ्वीराज रासो' और 'बीसलदेव रासो' यद्यपि दोनों अपने चरित-नायकों के बाद के हैं—अधिक से अधिक-विक्रम की चौदहवीं शताब्दी की रचनाएँ हैं।

किन्तु इन दोनों रासो ग्रंथों का यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, तो दोनों में साम्य इतना ही मिलता है कि दोनो प्रबन्ध-काव्य हैं, और अन्तर दोनों में इतना अधिक है कि यह विश्वास नहीं हो सकता कि दोनो एक ही परम्परा की रचनाएँ हैं। आकार की दृष्टि से देखा जाए तो 'बीसलदेव रासो' में इतने ही छंद हैं

जितने 'पृथ्वीराज रासो' के एक औसत समय में होंगे—और 'पृथ्वीराज रासो' की वृहत् वाचना के मुद्रित संस्करण में ६९ समय हैं; उसकी लघु वाचना में भी १९ समय हैं। छंद-योजना की दृष्टि से देखा जाए तो 'पृथ्वीराज रासो' में पचासों प्रकार के छंद हैं, किन्तु 'बीसलदेव रासो' में केवल एक छंद है। संगीतात्मकता की दृष्टि का 'पृथ्वीराज रासो' में नितान्त अभाव है, वह केवल पठन-पाठन के लिए लिखा गया है, किन्तु 'बीसलदेव रासो' केदारा राग में गाए जाने के लिए लिखा गया है, और आदि से अन्त तक उसमें ध्रुवक की एक पंक्ति प्रत्येक छंद के साथ लगी हुई है। विषय की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के प्रायः संपूर्ण जीवन की कथा है, 'बीसलदेव रासो' में बीसलदेव के केवल १२ वर्ष के जीवनांश की कथा है। कथावस्तु की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' में अनेकानेक घटनाओं का समावेश है, 'बीसलदेव रासो' में केवल एक घटना का विकास किया गया है। रस की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' में प्रमुखता वीर रस की है, यद्यपि शृंगार तथा अन्य रसों का भी उसमें समावेश हुआ है, किन्तु 'बीसलदेव रासो' में केवल एक रस है—शृंगार; और उसमें भी उसके विप्रलम्भ पक्ष का ही विकास किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' दुखान्त है, तो 'बीसलदेव रासो' सुखान्त। दोनों ग्रन्थों की कथा-वस्तु से आप भली भाँति परिचित हैं। इसलिए उसका उल्लेख अनावश्यक होगा।

ऐसी दशा में हम इन दो रचनाओं के आधार पर रासो-प्रवन्ध के सम्बन्ध में कोई भी निश्चित धारणा हम नहीं बना सकते हैं, यह प्रकट है। सौभाग्य से यह रासो-परम्परा हिन्दी के आविर्भाव के पूर्व अपभ्रंश में, और हिन्दी के आविर्भाव के साथ-साथ गुर्जर साहित्य में भी मिलती है। फलतः रासो परम्परा का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि उक्त दोनो साहित्यों की भी रासो-परम्पराओं का अध्ययन किया जाए।

अपभ्रंश में केवल दो साहित्यिक रासो अभी तक मिले हैं—'मुञ्ज- रास' और 'संदेश रासक'। 'मुञ्जरास' की कोई प्रति अभी तक नहीं मिली है, केवल उसका उल्लेख हेमचन्द्र के प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्धहैम' (सं० ११९७ वि०) और मेरुतुंग के 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (सं० १३६१ वि०) में हुआ है। 'सिद्धहैम' में केवल दो छंद उससे उदाहरण के रूप में आए हैं, किन्तु 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में मुञ्ज-प्रवन्ध अर्थात् मुञ्ज की कथा दी हुई है, और कुछ अन्य छंद उससे उद्धृत हुए हैं। मुञ्ज

का समय सं० १००७ से १०५४ है, और 'सिद्धहैम' का समय सं० ११९७ है। इसलिए 'मुञ्जरास' का समय सं० १०५४ और ११९७ के बीच किसी समय हो सकता है। 'संदेश-रासक' का रचना-काल विद्वानों ने सं० १२०७ के लगभग निर्धारित किया है। विभिन्न दृष्टियों से इन दोनों रचनाओं का अध्ययन आवश्यक होगा।

दोनों प्रबन्ध-काव्य हैं, 'संदेश-रासक' तो प्रत्यक्ष ही है। 'मुञ्जरास' की भी जो कथा 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में दी हुई है, उससे यह स्पष्ट है। दोनों में कथाओं का आधार लिया गया है। 'संदेश-रासक' में कुल २२३ छंद हैं। 'मुञ्जरास' की निश्चित छंद-संख्या ज्ञात नहीं है; किन्तु 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में उसकी जो कथा दी हुई है, वह इससे कम छंदों में अथवा इसके दूने से अधिक छंदों में कदाचित् ही आई होगी। छंद-योजना की दृष्टि से 'संदेश-रासक' में बाइस प्रकार के छंद हैं, किन्तु 'मुञ्ज-रास' के जितने छंद 'सिद्धहैम' अथवा 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में उद्धृत हुए हैं वे अधिकांश दोहा हैं। दोनों ग्रंथ पठन-पाठन के लिए लिखे गए हैं, कोई भी गाए जाने के लिए नहीं लिखा गया है। विषय की दृष्टि से 'संदेश-रासक' में केवल प्रवास-जनित विरह का वर्णन है, 'मुञ्जरास' में मुञ्ज के जीवन के एक व्यापकतर अंश की कथा है। 'संदेश रासक' की कथा सुखांत है और 'मुञ्जरास' की कथा दुःखान्त। 'संदेश-रासक' में स्वकीया के प्रेम का विकास किया गया है, और 'मुञ्जरास' में परकीया के। इस प्रसंग में दोनों ग्रंथों की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक होगा।

'संदेश-रासक' की कथा इस प्रकार है। विजयनगर (राजस्थान) में एक विरहिणी है, जिसका पति प्रवास में खंभात गया हुआ है। बहुत दिनों के अनन्तर भी वह लौटा नहीं है। इसलिए वह एक पथिक से, जो खंभात जा रहा है, अपना प्रेम-संदेश भेजना चाहती है। पथिक ज्योंही उसका संदेश लेकर चलने को प्रस्तुत होता है, वह कुछ और कहने लगती है। इसी प्रकार कई बार होता है, यहाँ तक कि अन्त में जब पथिक चलने को उद्यत होता है, और उससे पछता है कि और कुछ तो नहीं कहना है, वह रो पड़ती है। पथिक उसको सांत्वना देता है, और संयोगवश पूछ बैठता है कि उसका पति किस ऋतु में प्रवास के लिए गया था। वह कहती है कि ग्रीष्म में, और इसके अनन्तर वह छःओं ऋतुओं और बारहों महीनों के अपने विरह-जनित कष्ट का वर्णन करती है। इसके अनन्तर पथिक उससे विदा लेकर जैसे ही प्रस्थान के लिए प्रस्तुत होता है, नायिका का पति

प्रवास से लौटता दिखाई पड़ता है, और नायक-नायिका पुनः मिलते हैं। इस संदेश-कथन के बीच 'संदेश-रासक' में नायिका की एक उक्ति आती है, जो तुलसी और केशव जैसे कहाकवियों की रचनाओं में मिलती है :—

संदेशडउ सवित्थरउ पर मइ कहणु न जाइ।
जो कालंगुलि मूंदडउ सो बाहडी समाइ॥

'मुञ्जरास' की कथा इस प्रकार है। मालवा का राजा मुञ्ज एक स्त्री से प्रेम करता था, और उससे मिलने के लिए प्रति रात्रि वह बारह योजन की यात्रा करता था—जाता थाऔर लौट आता था। किन्तु धीरे- धीरे उस नायिका का आकर्षण कम हो गया और उसने आना-जाना बन्द कर दिया। यहाँ पर 'सिद्धहैम' में उक्त नायिका की एक उक्ति दी हुई है जो प्रायः सूरदास के जीवन-वृत्तों में मिलती है :—

बांह बिछोडबि जाहि तुहु हउ तेवइं को दोसु।
हिअयट्ठिउ जइ नीसरहि जाणउं मुञ्ज सरोस॥

मुञ्ज का कर्नाटक के राजा तैलप से घोर वैमनस्य था। मुञ्ज ने तैलप के बल का ठीक अनुमान लगाए बिना ही, मंत्री के रोकने पर भी उस पर आक्रमण कर दिया। मुञ्ज पराजित और पुनः बन्दी हुआ। जब मुञ्ज बन्दीगृह में था, तैलप की विधवा बहिन मृणालवती से उसका प्रेम हो गया। मुञ्ज के मित्रों ने उसे बन्दी-गृह से निकाल भगाने की योजना की। मुञ्ज ने मृणालवती से यह बताते हुए कहा कि वह भी उसके साथ चले। किन्तु मृणालवती लोक-लाज के कारण मुञ्ज के साथ भागना नहीं चाहती थी, यद्यपि वह मुञ्ज को छोड़ना भी नहीं चाहती थी। इसलिए उसने चाहा कि मुञ्ज बन्दीगृह में ही बना रहे, और इस उद्देश्य से उसने उक्त षड्यंत्र की सूचना अपने भाई तैलप को दे दी। तैलप ने उस षड्यंत्र का अन्त कर दिया, और उसके अनन्तर मुञ्ज को घर-घर यहाँ तक कि मृणालवती के समक्ष भी भीख मँगाई और हाथी के पैरों से कुचलवा कर मरवा डाला।

अपभ्रंश में केवल एक रासो ग्रंथ और मिला है; वह है जिनदत्त सूरि विरचित 'उपदेश रसायन रास'। जिनदत्त सूरि का स्वर्गवास सं० १२९५ वि० में हुआ था। किन्तु यह धामिक परम्परा की रचना है, जो इसके नाम से भी प्रकट

है। इसमें कोई कथा-प्रबन्ध नहीं है। कुल केवल ८० चतुष्पदियाँ हैं। आदि से अन्त तक एक ही छंद है। ग्रंथ-रचना पठन-पाठन के लिए की गई है, गाए जाने के लिए नहीं। विषय की दृष्टि से एक मात्र जैन धर्म का प्रतिपादन किया गया है। रस एक मात्र शांत रस है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि अपभ्रंश के इन तीन रासो-ग्रंथों से भी रासो-परम्परा की मुख्य प्रवृत्तियाँ स्पष्ट नहीं होतीं।

गुर्जर साहित्य में भी रासो ग्रंथ उसके आविर्भाव काल से ही मिलते हैं—और कहा गया है कि प्रायः १७०० वि० तक प्रत्येक दशाब्दी में रचा गया कोई न कोई रासो ग्रंथ बताया जा सकता है। किन्तु गुर्जर साहित्य की इस रासो-परम्परा में जितनी रचनाएँ मिलती हैं, वे सभी जैन कवियों की हैं, और जैन धर्म को लक्ष्य करके प्रस्तुत की की गई हैं। आकार में ये रचनाएँ प्रायः छोटी हैं।

इनमें सबसे प्राचीन 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' तथा 'बुद्धिरास' है, जिनके रचयिता शालिभद्र सूरि हैं, जो सं० १२४१ में उपस्थित थे।

'भरतेश्वर बाहुबलि रास' में भगवान ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबलि के बीच राजसत्ता के लिए परस्पर संघर्ष करने की कथा है। इसका मुख्य रस वीर है। कुल छंद-संख्या २०३ है।

'बुद्धि रास' में केवल उपदेश के छंद हैं। रस शान्त है। कुल छंद-संख्या ६३ है।

गुर्जर साहित्य के शेष रासो ग्रंथ भी इसी प्रकार धार्मिक कथा अथवा धार्मिक उपदेश का प्रतिपादन करते हैं।

प्रकट है कि गुर्जर रासो-परम्परा से हमारी समस्या सुलझने के स्थान पर और भी उलझ जाती है।

इस समस्या पर हमारे रीति-ग्रंथों से भी कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। हिन्दी के किसी भी प्राचीन रीति-ग्रंथ में 'रासो' के लक्षण नहीं दिए गए हैं। गुर्जर के रीति-साहित्य में रासो के लक्षण मिलते हैं, यह ज्ञात नहीं है। अपभ्रंश में ही 'रासो-प्रबन्ध' के लक्षण रीति-ग्रंथों में मिले हैं। ये लक्षण विरहाङ्ककृत 'जाति समुच्चय' तथा स्वयंभूकृत 'स्वयंभूछन्दस्' (६५० वि० ?) में मिलते हैं।

विरहाङ्क ने अपभ्रंश छंदों का विवेचन समाप्त करते हुए लिखा है (४.३८):—

अडिलाहि दुवहए हि व मत्ता रड्डाहि तहअ ढोसाहि ।
बहुएहि जो रज्जइ सो भएणइ रासओ णाम ।

जिसमें बहुत से अडिल्ला, दोहा, मात्रा, रड्डा, और ढोसा छन्द पाए जाते हैं, वह रचना 'रासो' कहलाती है ।

स्वयंभू ने भी अपभ्रंश छंदों का विवेचन समाप्त करते हुए लिखा है (८.४९) :—

घत्ता छड्डणिअहि पद्धडिआहि सुअएण रुएहि ।
रासाबंधो कव्वे जणमण अहिरामो होइ ॥

अपने घत्ता, छड्डणिया, पद्धडिया, तथा अन्य रूपकों (वृत्तों) के कारण 'रासाबंध' जनमन-अभिराम होता है ।

इन लक्षणों से केवल इतना प्रकट है कि रासो में एक से अधिक प्रकार के छंद होने चाहिए । मुख रूप में कौन-कौन से छंद होने चाहिए, इस विषय में दोनों के मत भिन्न-भिन्न हैं ।

इसके आगे अपभ्रंश के रीति-ग्रंथ भी हमारी सहायता नहीं करते । विविध प्रकार के 'रास' 'रासावलय' 'रासा' और 'रासक' छंदों, 'रासक' और 'नाट्य रासक' —उपनाटकों 'रासक' 'रास' तथा 'रासो' नृत्यों और नृत्तों से भी 'रासो'- प्रबंध परम्परा का कोई निकट का सम्बंध रहा है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । कदाचित् नहीं रहा है । प्राप्त रासो-ग्रंथों से यही ज्ञात होता है । फलतः इस विषय पर और अधिक गवेषणा और अन्वेषण की आवश्यकता प्रकट है ।

रास और रासक काव्य–परम्पराएँ

'रास' तथा 'रासो' नामों से अभिहित अपभ्रंश और गूर्जर-हिन्दी के एक अति लोक-प्रिय काव्य रूप से क्या तात्पर्य है, और उक्त काव्य रूप के मूलभूत तत्त्व क्या हैं, यह हमारे साहित्य के कुछ सबसे अधिक उलझे हुये प्रश्नों में से है।[1] उलझन का मुख्य कारण यह है कि इन नामों से अभिहित रचनाओं का सम्यक् विश्लेषण करके कोई परिणाम निकालने के स्थान पर अधिकतर आलोचकों ने किया यह है कि अपनी किन्हीं पूर्व कल्पित धारणाओं को इस काव्य रूप की दो चार कृतियों की सहायता से किसी न किसी प्रकार प्रमाणित करने का प्रयास मात्र किया है और जिन रचनाओं में उनकी उक्त स्थापनाओं के विरुद्ध कोई तत्त्व मिले हैं, उन्हें परम्परा की विकृति अथवा उसका अपवाद मान लिया है। प्रस्तुत लेखक इस क्षेत्र में पहला था जिसने कुछ वर्ष पूर्व 'रास' तथा 'रासो' नाम से अभिहित लगभग तीन दर्जन प्राचीन रचनाओं का विस्तृत परिचय देते हुये उक्त काव्यरूप की दो एक-दूसरे से किंचित् पृथक् परम्पराओं के मूलभूत तत्वों का प्रतिपादन किया था।[2] इधर कुछ और भी सामग्री प्रकाश में आई है तथा इसबात की आवश्कता ज्ञात हो रही है कि दोनों परम्पराओं के अन्तर्गत आने वाली रचनाओं का विश्लेषण काव्य रूप के विभिन्न तत्वों के अनुसार किया जाए जिससे

---

१. रासो प्रबन्ध परम्परा की रूपरेखा शीर्षक पूर्ववर्ती अध्याय।

२. दे० प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित 'रासो काव्य धारा' : हिन्दी साहित्य (भाग २): भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग।

उस काव्य रूप के मूलभूत तत्वों के सम्बन्ध में और अधिक स्पष्टता के साथ किन्हीं परिणामों पर पहुँचा जा सके। इसी दृष्टि से प्रस्तुत प्रयास किया जा रहा है।

इस अध्ययन के अन्तर्गत जिन रचनाओं को लिया जा रहा है उनके परीचयात्मक विवरण नीचे दिए जा रहे हैं।

रास-परम्परा की रचनाएँ

(१) **उपदेश रसायन रास** —रचयिता श्री जिनदत्त सूरि। इसकी रचना तिथि ज्ञात नहीं है, किन्तु इसके रचयिता की एक अन्य रचना 'काल स्वरूप कुलक' [1] की रचना-तिथि सं० १२०० के बाद होनी चाहिए, क्योंकि उसमें सं० १२०० की एक घटना का उल्लेख है (छंद ३)। इसलिए इस रचना का समय भी सं० १२०० के आस-पास या कुछ बाद में माना जा सकता है। [2] रचना अपभ्रंश की है और गूर्जर प्रदेश में रची गयी है। इसके दो संस्करण प्राप्त हैं: एक 'अपभ्रंश काव्य त्रयी' (गायकवाड़ ओरीएन्टल सीरीज़) में प्रकाशित हैं, और दूसरा डॉ० दशरथ ओझा और डॉ० दशरथ शर्मा द्वारा संपादित 'रास और रासान्वयी' काव्य में प्रकाशित है। प्रथम में केवल ३२ छंद हैं, जब कि द्वितीय में ८० छंद हैं। दोनों में पाठ-सम्बन्धी अन्तर भी है। अतः रचना का पाठ-निर्धारण आवश्यक है।

(२) **भरतेश्वर बाहुबली रास** — रचयिता शालिभद्र सूरि। इसमें रचना-तिथि सं० १२३१ दी हुई है (छंद २०३)। मुनिजिन विजय जी के अनुसार रचयिता पाटण में निवास करते थे, [3] इस लिए रचना वहाँ की मानी जा सकती है। इसके दो संस्करण प्राप्त हैं: एक श्री लालचंद भगवान दास गांधी द्वारा संपादित तथा प्राच्य विद्यामंदिर बड़ौदा द्वारा प्रकाशित है और दूसरा उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशित है।

---

१. 'अपभ्रंश काव्य त्रयी': गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़, बड़ौदा।

२. विशेष जीवन-विवरण के लिए दे० 'रास और रासान्वयी काव्य' लेखक डॉ० दशरथ ओझा तथा डॉ० दशरथ शर्मा, भूमिका, पृ० ३६०।

३. उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य', पृ० ६०।

(३) बुद्धि रास—रचयिता शालिभद्र सूरि। यह रचना भी उन्हीं शालिभद्रसूरि की है जिनकी 'भरतेश्वर बाहुबली रास' है। इसमें रचना तिथि नहीं दी गई है, अतः अनुमान से इसकी रचना-तिथि 'भरतेश्वर- बाहुबली रास' की रचना-तिथि सं० १२४१ के आस-पास मानी जा सकती है। यह रचना भी 'भरतेश्वर बाहुबली रास' की भाँति पाटण की मानी जा सकती है। इसमें कुल ६३ छंद हैं। इसका एक संस्करण उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्राप्य है।

(४) जीव दया रास—रचयिता आसगु। इसकी रचना सं० १२५७ में हुई थी (छंद ५३)।[1] यह रचना जालौर (पश्चिमी राजस्थान) की है (छंद २) इसकी कुल छंद-संख्या ५३ है। इसका भी एक संस्करण उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशित है।

(५) चंदन बाला रास—रचयिता आसगु। इसकी रचना-तिथि ज्ञात नहीं है। किन्तु यह उसी आसगु की रचना है जिसकी उपर्युक्त 'जीवदया रास' है। इसलिए इसकी रचना सं० १२५७ के आस-पास मानी जा सकती है। यह जालौर निकट सहजिगपुर (पश्चिमी राजस्थान) में रची गई थी। इसमें कुल ३५ छंद हैं। यह 'राजस्थान भारती' में(भाग ३ अंक ३, पृ० १०६-११२ पर) श्री अगरचंद नाहटा द्वारा संपादित रूप में प्रकाशित है।

(६) रेवंत गिरि रास—रचयिता श्री विजय सेन सूरि। इसका रचना काल सं० १२८८ के लगभग माना गया है।[2] इसकी रचना सोरठ प्रदेश में हुई थी। इसमें कुल ७२ छंद हैं। इसका एक संस्करण श्री सी० डी० दलाल द्वारा संपादित और गायकवाड़ ओरियंटल इंस्टीट्यूट बड़ौदा द्वारा प्रकाशित 'प्राचीन गूर्जर काव्य' भाग १ में है, और एक अन्य संस्करण उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशितहै।

(७) नेमि जिणंद-रास (आबूरास)—रचयिता पाल्हण। यह सं० १२०९ की कृति है (छंद ५४)। इसकी रचना पहाण (गूर्जर प्रदेश) में हुई थी (छंद २)। इसमें कुल ५५ छंद हैं। इसके दो संस्करण प्राप्त हैं: एक राजस्थानी भाग ३, अंक १ में प्रकाशित है, और दूसरा उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में संकलितहै।

(८) नेमिनाथ रास—रचयिता सुमतिगणि। रचना-तिथि ज्ञात नहीं है किन्तु रचयिता की एक अन्य रचना 'गणधर सार्ध शतक वृत्ति' सं०१२९५ की है (रास

१. प्रो० मंजुलाल मजमुदार: गुजराती साहित्यना स्वरूपो, पृ० ८१६।
२. नाथूराम प्रेमी :हिन्दी जैनसाहित्य का इतिहास, पृ० १२५।

और रासान्वयी काव्य, भूमिका पृ० ३६२), इसलिए यह रचना सं० १२६५ के आस-पास की मानी जा सकती है। यह अनुमान किया जाता है कि रचयिता राजस्थान के निवासी थे (वही, पृ० ३६१)। रचना ५४ छंदों में समाप्त हुई है। इसका एक सस्करण उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशित है।

(९) गय सुकुमाल रास—रचयिता देल्हणि। रचना-तिथि अज्ञात है। किन्तु अनुमान किया गया है कि सं० १३०० के लगभग इसकी रचना हुई होगी।[1] इसका रचना-स्थान भी ज्ञात नहीं है। यह ३४ छंद में समाप्त हुई है। इसके दो संस्करण है : एक 'राजस्थान भारती' भाग ३, अंक २ पर श्री अगरचंद नाहटा द्वारा संपादित और प्रकाशित है, दूसरा उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशित है।

(१०) सप्त क्षेत्रिरासु —रचयिता अज्ञात हैं। यह सं० १३२७ की रचना है (छंद ११८)। इसका रचना-क्षेत्र गूर्जर प्रदेश माना जाता है। इसमें कुल ११९ छंद हैं। यह रचना श्री सी० डी० दलाल द्वारा संपादित 'प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह' भाग १ (गायकवाड़ ओरिएंटलसीरीज़) में प्रकाशित है।

(११) पेथड रास—मंडलिक रचित। इसकी रचना सं० १३६० के आस-पास मानी गई है।[2] इसकी रचना भी गूर्जर प्रदेश में हुई मानी जाती है। इसमें कुल ६५ छंद हैं। यह भी उपर्युक्त 'प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह' भाग १ में प्रकाशित है।

(१२) कच्छूली रास—लेखक का नाम अज्ञात है। इसकी रचना सं० १३६३ में हुई थी (छंद ३५)। यह रचना भी गूर्जर प्रदेश की मानी जाती है। इसमें कुल ३५ छंद हैं। यह रचना भी उपर्युक्त 'प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह' भाग १ में प्रकाशित है।

(१३) समरा रास—रचयिता श्री अम्बदेव सूरि। यह रचना सं० १३७१ के बाद किसी तिथि की है, क्योंकि इसमें सं० १३७१ की एक घटना का उल्लेख हुआ है (भाषा १२, छंद ९)। इसका रचना स्थान अणहिलपुर (पाटण, गुजरात) है। यह भी उपर्युक्त 'प्राचीन गूर्जर काव्य संग्रह' भाग १ में प्रकाशित है।

---

१. 'रास और रासान्वयी काव्य, पृ० ११५।

२. डॉ० भोगीलाल सांडेसरा : इतिहास नी केडी''पृ० १ ९९।

(१४) **पंच पंडव रास**—यह रचना शालिभद्र सूरि की है। इसकी रचना तिथि सं० १४१० है (अंतिम छंद)। यह नादोद (गूर्जर प्रदेश) में रची गई थी। यह कुछ बड़ी रचना है, जिसमें विभिन्न छंदों की ७९५ पंक्तियाँ आयी हैं। इसका एक संस्करण उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशित है।

(१५) **गौतम स्वामी रास**—रचयिता विनयप्रभ उपाध्याय। इसकी रचना-तिथि सं० १४१२ है (छंद ५८)। यह खम्भात में रची गई थी (छंद ५८)। इसमें कुल ६२ छंद हैं। इसका एक संस्करण उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशित है।

(१६) **कुमारपाल रास**—रचियिता देवप्रभ। इसकी रचना सं० १४३५ के लगभग गूर्जर प्रदेश में हुई मानी गयी है।[1] इसमें कुल ४३ छंद हैं। इस रचना का एक संस्करण डॉ० भोगी लाल सांडेसरा द्वारा संपादित होकर 'भारतीय विद्या' भाग २, अंक ३ में (पृ० ३१३-३२४ पर) प्रकाशित है।

(१७) **कलिकाल रास**—रचयिता हीरानंद सूरि। इसकी रचना-तिथि सं० १४८६ है (छंद ४७)। रचयिता राजस्थान के निवासी थे।[2] इसमें कुल ४८ छंद हैं। यह श्री अगरचंद नाहटा और श्री भँवर लाल नाहटा द्वारा संपादित होकर 'हिन्दी अनुशीलन' भाग १०, अंक १ में (पृ० ५४-५६ पर) प्रकाशित है।

(१८) **बीसलदेव रास**—रचयिता नरपति नाल्ह। इसकी रचना अनुमान से सं० १४०० के लगभग मानी गई है। यह पश्चिमी राज-स्थान की रचना ज्ञात होती है। इसे प्रस्तुत लेखक ने अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय के द्वारा प्रकाशित किया है।

रासक (रासो)–परम्परा की रचनाएँ

(१) **संदेश रासक**—रचयिता अब्दुल रहमान। इसकी रचना-तिथि ज्ञात नहीं है। मुनि जिनविजय जी के अनुसार इसका रचना- काल शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के आक्रमण के पूर्व होना चाहिए, कारण यह है कि इसमें मुल्तान (मूलस्थान)

---

१. 'भारतीय विद्या', भाग २ अंक ३ पृ० ३१३-३२४

२. श्री हीरानन्द सूरि रचित कलिकाल रास— श्री अगरचन्द तथा भँवर लाल नाहटा, हिंदी अनुशीलन वर्ष १०, अंक १, पृ० ५५'

का वर्णन एक बड़े और समृद्ध हिन्दू तीर्थ के रूप में हुआ है, और गोरी के आक्रमण के अनन्तर उसकी वह समृद्धि सदैव के लिए मिट गई थी। [१] अब्दुल रहमान मुल्तान का निवासी था। इसकी भाषा अपभ्रंश है। रचना कुल २२३ छंदों में समाप्त हुई है। इस समय इसके तीन संस्करण प्राप्त हैं, एक मुनि जिन विजय जी द्वारा संपादित और भारतीय विद्याभवन है बम्बई से प्रकाशित है, दूसरा श्री विश्वनाथ त्रिपाठी द्वारा संपादित और ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई से प्रकाशित है, और तीसरा उपर्युक्त 'रास और रासान्वयी काव्य' में प्रकाशित है।

(२) मुञ्ज रासो—इस नाम की कोई रचना अभी तक नहीं मिली है किन्तु हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण, मेरुतुङ्ग के 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और एक अन्य जैन प्रबन्ध संग्रह में, जिसका उपयोग मुनि जिन विजय जी ने पुरातन प्रबन्ध-संग्रह के सम्पादन में किया है, मुञ्ज—विषयक किसी रचना के लगभग बीस छंद मिलते हैं जो कई प्रकार के वृत्तों में है ये छंद अपभ्रंश में हैं। यद्यपि निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकत है, किन्तु असंभव नहीं है कि यह रचना रासो-परम्परा की हो। इसका रचयिता अज्ञात है। रचना-काल भी निश्चित नहीं है। यह रचना एक स्त्री के प्रेम में मुञ्ज की दुर्गति-पूर्ण मृत्यु का चित्रण करत है, इसलिए उसके किसी वंशज द्वारा निर्मित न कराई गई होगी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। हेमचंद के 'प्राकृत व्याकरण' का रचना-काल सं० ११९० है, और मुञ्ज का समय सं० १०००-१०५४ वि० अनुमान किया जाता है, अतः इस रचना का समय सं० १०५४ और ११९० के बीच संभवतः सं० ११५० के आस-पास माना जा सकता है। इन प्रबन्धों में जो कथा मुञ्ज की आती है, उससे जान पड़ता है कि रचना आकार में छोटी न रही होगी।

(३) पृथ्वीराज रासउ — रचयिता चंद बरदाई। सामान्यतः चन्द पृथ्वीराज का समकालीन माना जाता है, इसलिए रचना विक्रमीय तेरहवीं सदी की मानी जाती है। किन्तु प्रस्तुत लेखक के अनुसार यह सं० १४०० के आस-पास की होनी चाहिए। रचना पिंगल (प्राचीन ब्रज) में है, जो किसी समय पश्चिमी हिन्दी की काव्य-भाषा थी। इसका एक संस्करण बा० श्यामसुन्दर दास और मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या द्वारा संपादित और नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित है। किन्तु प्रतियों में इसके कई आकार मिलते हैं: सभा का संस्करण सबसे बड़े आकार का है, जिसमें लगभग १०,००० रूपक हैं, उससे

---

१ संदेशरासक (सिंघी जैन ग्रंथ माला) प्रस्तावना, पृ० ११-१५।

एक छोटा आकार मिलता है, जिसमें लगभग ३,४०० रूपक हैं, एक उससे भी छोटा आकार मिलता है जिसमें लगभग ११०० रूपक हैं, तदनंतर एक मिलता है जिसमें लगभग ५५० रूपक हैं, और पुनः एक मिलता है जिसमें लगभग ४२२ रूपक हैं। प्रस्तुत लेखक का मत है कि उत्तरोत्तर छोटे से छोटे आकार से बड़े से बड़े आकार बने हैं, किन्तु जो सबसे छोटा आकार प्राप्त है, मूल रचना का आकार उससे भी कुछ छोटा लगभग ३६० रूपकों का था। प्रस्तुत लेखक ने रचना की विभिन्न समस्याओं पर विस्तार पूर्वक विचार किया है और विभिन्न पाठ-परम्पराओं की उसकी प्राचीनतम प्रतियों के आधार पर एक पाठ संपादित किया है जो मुद्रित हो रहा है।[1]

(४) हम्मीर रासो—हिन्दी साहित्य के इतिहासों में शार्ङ्गधर लिखित हम्मीर रासो की चर्चा आई है, किन्तु अभी तक इस प्रकार की कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई है। केवल 'प्राकृत पैंगलम्' में आठ छंद हम्मीर के विषय के हैं, जो एक ही रचना से लिए गये प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनमें परस्पर कोई प्रसंगावृत्ति नहीं मिलती है। इन छंदों के वृत्त भी पृथक्-पृथक् आठ हैं। इसलिए यह निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि हम्मीर-सम्बन्धी कोई ऐसी रचना थी जिसमें अनेक प्रकार के छंद प्रयुक्त थे। असंभव नहीं कि यह रचना रासो-परम्परा की रही हो। इन छंदों में कुछ ऐसे उल्लेख भी आते हैं जो इतिहास की दृष्टि से शुद्ध नहीं हैं, यथा हम्मीर का खुरासान-विजय। इसलिए यह रचना हम्मीर की समकालीन नहीं हो सकती है, जैसा 'प्राकृत पैंगलम्' के विद्वान् सम्पादक श्री चन्द्रमोहन घोष ने इसे माना है। किन्तु इन छंदों की भाषा ऐसी है कि रचना हम्मीर के समय के कुछ ही बाद की होनी चाहिए। शार्ङ्गधर भी हम्मीर के समकालीन नहीं थे, उनके पितामह श्री राघवदेव हम्मीर के कृपापात्र थे। इसलिए यह असंभव नहीं है कि हम्मीर संबंधी उक्त रचना शार्ङ्गधर की कृति रही हो। किन्तु यह बात अभी निश्चय के साथ नहीं कही जा सकती है। रचना उत्तरकालीन साहित्यिक अपभ्रंश में है। इसके छंद 'प्राकृत पैंगलम्' में उदाहरणों के रूप में उद्धृत किए गए हैं, इसलिए रचना सम्मानित रही होगी, यह भी प्रतीत होता है।[2]

---

१. साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी से प्रकाशनीय।

२. विशेष जानकारी के लिए देखिए: 'प्राकृत पैंगलम् के हम्मीर विषय-छंद' शीर्षक प्रस्तुत लेखक का: उत्तर भारती।

(५) **बुद्धि रासो**—रचयिता जल्ह कवि। यह रचना अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में है, जिसके आधार पर इसकी एक सूचना पं० मोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थान में हिन्दी हस्त-लिखित ग्रंथों की खोज,प्रथम भाग तथा 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में दी है। यह एक छोटी रचना है। जल्ह के नाम से कुछ छंद 'पृथ्वीराज रासो' के वृहद् पाठ में भी मिलते हैं, जिसमें उसे चंद की अधूरी कृति का पूरक कवि भी कहा गया है। यह असंभव नहीं कि ये दोनों जल्ह एक ही हैं, यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है। 'बुद्धि रासो' के रचयिता ने उसमें रचना-काल नहीं दिया है। 'पृथ्वीराज रासो' के पूरक कृतित्त्व वाले जल्ह का समय 'पृथ्वीराज रासो' की रचना (सं० १४०० के लगभग) के बाद और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संकलित 'जयचंद-प्रबन्ध' लेखन के और पूर्व पड़ना चाहिए। जिन प्रतियों के आधार पर 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह में पृथ्वीराज प्रबन्धों का सम्पादन किया गया है, उनमें से एक सं० १५२८ की है। अतः इस जल्ह का समय सं० १४०० तथा सं० १५२८ के बीच सं० १४५० के आस-पास होना चाहिए। यदि वही जल्ह 'बुद्ध रासो' का भी रचयिता हो तो 'बुद्धि रासो' का समय सं० १४५० के लगभग माना जा सकता है।[1]

(६) **परमाल रासो**—इस नाम की कोई कृति मिलती नहीं है, केवल 'महोबा खंड' नाम से 'पृथ्वीराज रासो' के एक अंश के रूप प्रस्तुत की गई कृति को डॉ० श्यामसुन्दर दास ने इस नाम से संपादित किया था। यह सं० १९७६ वि० में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हुई है। इसका रचयिता अज्ञात है। प्रतियों में इसका रचयिता भी चंद कहा गया है। 'पृथ्वीराज रासो' के वृहद् पाठ में मिलने वाले महोबाखंड का यह एक परिवर्धित रूप मात्र है और आश्चर्य है कि डॉ० श्यामसुन्दर दास ने ही, जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' के उक्त पाठ का सम्पादन किया था, इसे एक स्वतंत्र रचना माना, यद्यपि 'पृथ्वीराज रासो' के उक्त संस्करण के महोबा खंड के प्रायः सभी छंद इस रचना में मिल जाते है। इस महोबा खंड की रचना अवश्य ही 'पृथ्वीराज रासो' के बाद हुई होगी, जब किसी को 'पृथ्वीराज रासो' में यह कमी प्रतीत हुई होगी कि पृथ्वीराज और परमाल के इतिहास प्रसिद्ध युद्ध का उसमें कोई उल्लेख नहीं है। महोबा खंड की प्रतियाँ भी 'पृथ्वीराज रासो' की प्राचीनतम प्रतियों से बहुत पीछे की मिलती हैं, वे उन्नीसवीं शती विक्रमीत की हैं। अतः असंभव नहीं कि यह महोबा खंड सोलह वीं शती विक्रमीय की रचना हो।

---

१. विशेष जानकारी के लिए देखिए ; 'रासो परम्परा का एक विस्मृत कवि जल्ह शीर्षक लेख जो आगे आया है।

(७) राउजैतसी रासो—इसका रचयिता भी अज्ञात है। 'राजस्थान भारती' में भाग २ (अंक २, पृ० ७०) श्री नरोत्तमदास स्वामी ने इसे संपादित करके प्रकाशित किया है। यह रचना केवल ६० छंदों में समाप्त हुई है। इसमें रचना काल नहीं दिया हुआ है, किन्तु बीकानेर नरेश राव जैतसी और हुमायूँ के भाई कामराँ का युद्ध सजीव रूप में वर्णित हुआ है, इसलिए यह रचना राव जैतसी के शासन-काल सं० १५०३-१५१८ के आस-पास की मानी गई है।

(८) विजयपाल रासो—रचयिता नल्हसिंह भाट। रचना में नल्ह सिंह विजयगढ़ (करौली) के यदुवंशी शासक विजयपाल के आश्रित कवि के रूप में आता है, किन्तु यह संभव नहीं है, क्योंकि इसमें तोपों तक का उल्लेख हुआ है, जब कि विजयपाल का समय सं० ११०० के आस-पास माना जाता है। यह रचना पूर्ण रूप में प्राप्त भी नहीं है, केवल इसके ४२ छंद प्राप्त हुए हैं। इस रचना का जो रूप इस समय प्राप्त है, वह भाषा की दृष्टि से विक्रमीय १७ वीं शदी से पूर्व का नहीं हो सकता है।[1]

(९) राम रासो—रचयिता माधवदास चारण। इसका रचनाकाल सं० १६७५ है।[2] इसका विषय रामचरित्र है। रचना लगभग १६०० छंदों में समाप्त हुई है।

(१०) राणा रासो—रचयिता दयालदास। रचना में तिथि नहीं दी हुई है, किन्तु इसकी एक प्रति सं० १६४४ की मिली है जो सं० १६७५ की किसी प्रति की प्रतिलिपि बताई गई है जो कवि की लिखी हुई थी।[3] किन्तु वर्त्तमान प्रति के पाठ में महाराजा जयसिंह (सं०० १७३७-१७५५) तक के वर्णन हैं। इसलिए यदि यह मान भी लिया जाए कि मूल रचना सं० १६७५ या उसके पूर्व की होनी चाहिए, यह मानना पड़ेगा कि वह बाद में किए हुए प्रक्षेपों के साथ ही इस समय प्राप्त है। इसमें सीसोदिया वंश के प्रमुख राजाओं के युद्धादि का वर्णन सविस्तार-रूप में किया गया है। इसकी कुल छंद-संख्या ८७५ है।

(११) रतन रासो—रचयिता कुम्भकर्ण। इसका रचना-काल सं० १६७५ तथा सं० १६८१ के बीच अनुमान किया गया है।[4] इसमें रतलाम के महाराणा

---

१. देखिए मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' ३-८३
२. हिंदी खोज विवरण १९०१ (ना. प्र. स. काशी) सूचना ७०।
३. मोतीलाल मेना रिया : राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज-प्रथम भाग, पृ० ११२।
४. काशीराम शर्मा : 'रतन रासो के रचयिता का वंश-परिचय'।

रतनसिंह का चरित्र वर्णित हुआ है ।

(१२) **कायम रासो**—रचयिता न्यामत खाँ 'जान' । इसकी रचना सं० १६९१ में हुई थी, जो इसके एक दोहे से प्रकट है, किन्तु इसमें वर्त्तमान रूप में सं० १७१० तक की घटनाएँ वर्णित हैं । जान कवि इसके बाद में भी जीवित रहे हैं । इसलिए यह असम्भव नहीं है कि बाद की घटनाएँ भी उन्होंने जोड़ी हों, किन्तु ऐसी दशा में वे रचना-काल वाला छंद भी बदल सकते थे, इसलिए यह भी असम्भव नहीं है कि सं० १६९१ के बाद वाली घटनाओं से सम्बन्धित अंश प्रक्षिप्त हों । इसमें कायम खानी वंश का इतिहास दिया हुआ है । यह रचना राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर से प्रकाशित है ।

(१३) **शत्रुसाल रासो**—रचयिता डूँगरसी । इसकी रचना-तिथिसं० १७१० के लगभग की मानी गई है । इसमें बूँदी के राव शत्रुसाल का चरित्र वर्णित है । इसकी छंद-संख्या ५०० के लगभग हैं ।[1]

(१४) **मांकण रासो**--रचयिता कीर्त्तिसुन्दर । इसकी रचना-तिथि रचना में ही सं० १७५७ दी हुई है । इसमें माकुण (मत्कुण)=खटमल का चरित्र वर्णित है । यह केवल ३९ छंदों की है । यह रचना प्रकाशित है (राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४, पृ० १००) ।

(१५) **सगतसिंह रासो**—रचयिता गिरिधर चारण । रचना काल रचना में नहीं दिया हुआ है । इसमें महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह तथा उनके वंशजों का वर्णन है । श्री अगरचन्द नाहटा के के अनुसार यह रचना सं० १७५५ के बाद की है ।[2] इसकी कुल छंद-संख्या ९४३ है ।

(१६) **हम्मीर रासो**—महेश कविकृत । इसमें रचना-काल नहीं दिया हुआ है, किन्तु यह जोधराज की इसी नाम की रचना से पूर्व की कृति ज्ञात होती है ।[3]

---

१. मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १५८' ।

२. श्री अगर चंद नाहटा : 'राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' भाग ३. पृ० १०७ ।

३. प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित : 'संस्कृत और हिंदी का हम्मीर विषयक साहित्य,' हिंदुस्तानी, भाग २१, अंक २१, पृ० १० ।

इसमें रथमौर के प्रसिद्ध शासक हम्मीर का चरित्र वर्णित है। यह रचना प्रस्तुत लेखक द्वारा सम्पादित हो चुकी है, और भारतीय सरकार की एक प्रकाशन-योजना में प्रकाशनीय है। इसकी कुल छंद-संख्या ३०० के लगभग है।

(१७) **हम्मीर रासो**—रचयिता जोधराज। इसकी रचना-तिथि सं० १७८५ है, जो रचना में दी हुई है। इसमें भी हम्मीर का चरित्र वर्णित हुआ है। यह डॉ० श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित और काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है।

(१८) **खुम्माण रासो**—रचयिता दलपति विजय। यह खुमाण की समकालीन रचना मानी जाती रही है, और खुमाण का समय सं० ७९०-८९० है। किन्तु इसकी जो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें राणा संग्राम सिंह द्वितीय (सं० १७६७-१७९०) तक के उल्लेख हैं।[1] इसलिए वर्त्तमान रूप में यह रचना सं० १७८०-१७९० के पूर्व की नहीं हो सकती है। वस्तुतः इसमें खुमाण का ही चरित्र नहीं, पूरे खुमाण वंश का इतिवृत्ति वर्णित है, जिस प्रकार 'कायमरासो' में कायमखानी वंश का हुआ है।

(१९) **रासा भगवंत सिंह का**—रचयिता सदानंद। इसमें रचना-तिथि नहीं दी हुई है। किन्तु इसमें सं० १७९७ के एक युद्ध का वर्णन है, इसलिए इसकी रचना सं० १७९७ के बाद हुई होगी। इसमें भगवंत सिंह खीची का चरित्र वर्णित है। इसकी कुल छंद-संख्या १०० है।[2]

(२०) **करहिया कौ रायसौ**—रचयिता गुलाब कवि। इसकी रचना सं०१८३४ में हुई थी, जब इसमें वर्णित करहिया के परमारों और भरत पुर के जवाहरसिंह के बीच युद्ध हुआ था।[3]

(२१) **रासा भइया बहादुरसिंह का**—रचयिता शिवनाथ। इसमें रचना-तिथि नहीं दी हुई है किन्तु सं० १८५३ के एक युद्ध का वर्णन है, इसलिए रचना उसके बाद की होनी चाहिए।[4]

---

१. राजस्थान में हिंदी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग ३ पृ० ८२।

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २००६, पृ० ११४-१३१।

३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०।

४. दे० हिंदी खोज विवरण (ना० प्र० स० काशी) १९२०-२२, सूचना १८२।

(२२) **रायसा**—रचयिता उपर्युक्त शिवनाथ। इसमें भी रचना-तिथि नहीं दी हुई है। अनुमान से इसे भी उनकी उपर्युक्त रचना के आस-पास का माना जा सकता है। इसमें धारा के जसवंत सिंह तथा रीवां के अजीत सिंह का युद्ध वर्णित है।[१]

(२३) **कलियुग रासो**—रचयिता अलिरसिक गोविंद। इसकी रचना-तिथि सं० १८६५ है। इसमें ७० छंद हैं। रचना में कलियुग का प्रभाव वर्णित है।[२]

(२४) **पारीछत रायसा**—रचयिता श्रीधर। इसमें दतिया के महाराजा पारीछत का चरित्र वर्णित है। इसमें कुल २७६ छंद हैं। इसकी रचना सं० १८७३ में हुई (छंद २७५)। यह श्री हरि मोहन लाल श्रीवास्तव द्वारा संपादित होकर 'भारतीय साहित्य' (१०७४ अंक-२, पृ० ९१-१२२५) प्रकाशित है।

काव्य रूप की दृष्टि से विचार

यदि इन रचनाओं में प्रस्तुत किए गए विषयों पर विचार किया जाए तो ज्ञात होगा कि दोनो ही परम्पराओं में विषय-वैविध्य बहुत है। पहले रास-परम्परा की रचनाओं को लीजिए।

उपदेश रसायन रास—इसमें श्रावकों को सदाचरण का उपदेश किया गया है; जहाँ एक ओर कुपथ गामी व्यक्तियों की दुर्गति का वर्णन किया गया है, दूसरी ओर सत्पथगामी व्यक्तियों की सुगति का भी वर्णन किया गया है। विषय-विवेचन में सुगमता और सुबोधता का ध्यान रक्खा गया है।

भरतेश्वर बाहुबलि रास—इसमें भगवान ऋषभदेव के दो पुत्रों भरत और बाहुबलि के बीच राज्याधिकार के लिए हुए संघर्ष की कथा है। अंत में बाहुबलि को वैराग्य हो जाता है, और भरत राज्याधिकार ग्रहण करते हैं। वीर रस का इसमें अच्छा परिपाक किया गया है किन्तु अन्त निर्वेद में होता है।

बुद्धि रास—इसमें भी 'उपदेश रसायन' की भाँति उपदेश-वचन हैं। सदाचरण, गार्हस्थ्य धर्म, दान और श्रावक धर्म आदि का निरूपण किया गया है।

१. वही, १९०१, सू० ६२।
२. वही, १९०९-११, सू० २६३।

जीव दया रास—इसमें भी श्रावकधर्म का निरूपण किया गया है, और जीव-दया के पालन तथा माता-पिता और गुरु की भक्ति का उपदेश किया गया है। पुत्र-कलत्रादि संसार के सम्बंधों से चित्त को हटा कर मन को स्वाधीन करने तथा धर्माचरण के लिए कहा गया है।

चंदन बाला रास—इसमें चंदन बाला नाम की एक सती स्त्री की कथा है। चंदन बाला चम्पा की राज कन्या है। चाचा पर कोशाम्बर का राजा चढ़ाई करता है, और उसका सेनापति चम्पा की राजमहिषी तथा चंदन बाला का हरण कर ले जाता है। राजमहिषी आत्मघात कर लेती है। चंदन बाला को सेनापति एक सेठ के हाथ बेच देता है। सेठानी उसे अनेक प्रकार की यंत्रणाएँ देती है, किन्तु चंदन बाला अपने सयम, सतीत्व और चरित्र पर अटल रहती है, और श्री महावीर से दीक्षा लेकर केवल ज्ञान प्राप्त करती है। इसमें चंदन बाला की यंत्रणाओं में करुण तथा अन्त से शांत रस का परिपाक हुआ है।

रेवंत गिरिरास—इसमें रेवंत गिरि (गिरि नार) का माहात्म्य वर्णित है। किस प्रकार वीर धवल के श्रेष्ठ मंत्रियों वस्तु पाल और तेजपाल ने यहाँ सरोवरादि का निर्माण कराया, तेजलपुर नगर बसाया, तथा यहाँ संघ की यात्रा का आयोजन किया, गुर्जरेश कुमार पाल के दण्डनायक अम्बड ने गिरिनार पर विशाल सोपान-पंक्ति बनवाई, गुजरेश जयसिंह देव के दण्डनायक साजन ने नेमि-जिनेन्द्र का नव भवन निर्मित कराया, कश्मीर से आए हुए संघाधिप अजित और रत्न नामक बंधुओं ने यहाँ एक अन्य नव भवन का निर्माण कराया और उसमें एक मणिमय नेमि प्रतिमा स्थापित कराई, पूर्वोक्त मंत्री वस्तुपाल ने ऋषभदेव का मंदिर बनवाया, और देवपाल मंत्री ने इंद्र-मंडप का उद्धार कराया आदि विवरण दिए हुए हैं और गिरिनार के अन्य देव-मंदिरों और प्रतिमाओं का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है।

नेमिजिणंद रास (आबू रास)—इसमें चन्द्रावती के राजा सोम के राज्य में स्थित आबू गिरि का माहात्म्य वर्णित है। वहाँ किस प्रकार विमल मंत्री ने अम्बा देवी का मंदिर बनवाया, और गुर्जरेश वीर धवल के मंत्री तेजपाल ने राजा सोमकी आज्ञा से विमल मंत्री के मंदिर के उत्तर एक अन्य मंदिर बनवाया-आदि का वर्णन किया गया है।

नेमि नाथ रास—इसमें नेमिनाथ जी का चरित्र वर्णित हुआ है: किस प्रकार सौरीपुर के राजा समुद्र विजय और उनकी रानी शिवा देवी के गृह में नेमि

नाथ जी ने अवतार ग्रहण किया, किस प्रकार उस समय जरासंध के आतंक से यादवगण सौरीपुर छोड़ कर द्वारावती में रहने लगे थे कृष्ण ने द्वारावती को समृद्ध किया, किस प्रकार नेमिनाथ के बल से कृष्ण आतंकित हुए, किस प्रकार उग्रसेन की कन्या राजमती से नेमिनाथ की सगाई स्थिर हुई किन्तु किस प्रकार विवाह के अवसर पर सत्कारार्थ वध करने के लिए लाए गए अनेक पशु- पक्षियों का करुण क्रन्दन सुन कर वे बिना विवाह किए ही लौट पड़े और वैराग्य ग्रहण कर गिरिनार पर आ गए, और किस प्रकार राजमती ने भी उनसे दीक्षा ग्रहण की और अंत में किस प्रकार नेमिनाथ का निर्माण हुआ आदि का वर्णन किया गया है।

गय सुकुमाल रास—इसमें गज सुकुमार मुनि का चरित्र वर्णित है—: किस प्रकार द्वारावती में नेमिनाथ के आशीर्वाद से देवकी के गर्भ से गय सुकुमाल का जन्म हुआ, किस प्रकार यह बालक अल्पावस्था में ही विरक्त हो गया, और तदनन्तर नेमिनाथ से दीक्षा लेकर द्वारावती के बाहर एक उद्यान में तप करने लगा, औप अंत में इसने शिव का स्थान प्राप्त किया—आदि घटनाओं का वर्णन किया गया है।

सप्त क्षेत्रि रासु—इसमें सप्त क्षेत्रों—जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की उपासना का उपदेश है।

पेथड रास—इसमें संघाधिपति पेथड की संघ लेकर की गई तीर्थ यात्रा का वर्णन विस्तार से किया गया है। वह संघ किस प्रकार मार्ग में रास नृत्य के साथ गान-वाद्यादिक का समायोजन करता हुआ तीर्थ यात्रा में कृतकार्य हुआ, यह बताया गया है।

कच्छूलि रास—इसमें आबू की तलहटी में स्थित कच्छूली तीर्थ और वहाँ के पार्श्व जिनके मन्दिर का वर्णन है। तदनंतर वहाँ के माणिक्य प्रभु सूरि के पदधर उदय सिंह सूरि की चन्द्रावती, मेवाड़ और द्वीपनगरी आदि की यात्राओं का वर्णन है, जिसमें उन्होंने अनेक श्रावकों का उद्धार किया और संघ की प्रभावना की। तदनंतर किस प्रकार उन्होंने कालि सूरि को अपने स्थान पर बिठाकर सुरलोक को प्रस्थान किया, यह बताया गया है।

समरा रास—इसमें संघपति समरसिंह (समरा) की संघ लेकर की गई तीर्थ यात्रा का वर्णन है। किस प्रकार उन्होंने तत्कालीन मुसलमान शासक से सहयोग प्राप्त किया और शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार कर वहाँ आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित की, और जूनागढ़, प्रभास-पट्टण आदि तीर्थों की यात्रा कर वे पाटण लौटे इसका वर्णन किया गया है।

पंचपंडव चरित रास—इसकी कथा महाभारत पर आधारित है। इसमें शान्तनु का गंगा से विवाह, गांगेय (भीष्म) का जन्म, गांगेय की वीरता, सत्यवती से विवाह करने के लिए पिता की इच्छा पर उनका उत्तराधिकार-त्याग, सत्यवती से विचित्रवीर्य का जन्म और फिर उनके पुत्रों धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म पाण्डु का कुन्ती और तदनंतर माद्री से विवाह, और पंच पांडवों का जन्म बताते हुए पांडवों का चरित्र महाभारत के युद्ध में उनकी विजय तक का वर्णन है। अंत में किस प्रकार नेमिनाथ जी के उपदेशों से पांडव जैन धर्म स्वीकार करते हैं, और परीक्षित को राज्य देकर मुनि बन जाते हैं, यह बताया गया है। विषय युद्ध प्रधान होने से इस रास में भी वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है, यद्यपि अंत निर्वेद में दिखाया गया है।

गौतम स्वामी रास—इस रास में गौतम स्वामी का चरित्र वर्णित है: किस प्रकार राज गृह के पास गुब्बर में गौतम गोत्र में इन्द्रभूति का जन्म हुआ, इन्होंने विद्याध्ययन करके विद्वत्ता प्राप्त की, भगवान महावीर से पावापुरी में शास्त्रार्थ किया, और शास्त्रार्थ में भगवान महावीर से प्रभावित होकर अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ उनसे दीक्षा ली, किस प्रकार इन्होंने २४ जिनालयों की यात्रा की और किस प्रकार भगवान महावीर ने इन्हें अपने निर्वाण के समय अपने से दूर भेज दिया, जिससे यह दुःखित हुए किन्तु अंत में ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष के अधिकारी हुए—आदि घटनाओं का वर्णन किया गया है।

कुमारपाल रास—इसमें गुर्जरेश कुमारपाल का चरित्र वर्णित है। किस प्रकार उन्होंने जैन धर्म को प्रश्रय दिया और अपने राज्य में पशुवध बन्द कर दिया, द्यूत क्रीड़ा का निषेध किया, वेश्यागमन, चोरी आदि को उठा दिया और प्रासादों से अनहिलवाड की शोभा बढ़ाई आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

कलिकाल रास—इसमें मुसलमानी शासन में होने वाले अत्याचारों तथा सामाजिक जीवन में उपस्थितपतनोन्मुख परिवर्तनों के रूप में कलियुग का प्रभाव वर्णित हुआ है।

बीसल देव रास—इसमें अजमेर के राजा बीसल देव के मान-जनित प्रवास की कथा वर्णित हुई है: किस प्रकार बीसल देव का विवाह धार के राजा भोज परमार की कन्या राजमती से होने पर उसके दायज में मिले हुए वैभव से उसके मन में अभिमान का उदय होता है, जिसको वह राजमती से व्यक्त करता है, और किस प्रकार वह राजमती के यह कहने पर कि उसे अभिमान न करना चाहिए क्योंकि

अनेक राजा उसके ही समान वैभवशाली हैं, जिनमें से एक तो उड़ीसा धिपति है, जिसके राज्य में उसी प्रकार खानों से हीरे निकलते हैं, जैसे बीसल देव के राज्य में साँभर की झील से नमक निकलता है वह स्त्री से रूठ कर उड़ीसा चला जाता है, और वहाँ के राजा के यहाँ एक भृत्य के रूप में रहने लगता है, किस प्रकार वह जब बारह वर्षों तक घर नहीं लौटता है, राजमती दुःखित होकर उसेवापस बुलाने के लिए संदेश भेजती है, किस प्रकार उड़ीसा के राजा को जब यह ज्ञात है कि उसका यह भृत्य अजमेर का चौहान राजा बीसल देव है, जो स्त्री से रुष्ट होकर उसकी सेवा में आया हुआ है वह उसे रत्नराशि देकर बिदा करता है, और तदनंतर किस प्रकार वह उस रत्नराशि को लेकर अजमेर वापस आता है और अपनी स्त्री राजमती से मिलता है—आदि का वर्णन बड़ी सजीवता से किया गया है। राजमती का विरह-वर्णन प्रभावपूर्ण है, जिसमें कि एक बारह मासा भी दिया गया है। अंत में राजमती से उसका मिलन जो वर्णित हुआ है, वह भी सुन्दर है।

अब रासक (रासो) परम्परा की रचना को लीजिए।

संदेश रासक—इसमें एक विरहिणी द्वारा अपने पति के पास भेजे जाने वाले संदेश की कथा है। विजय नगर (जैसलमेर ?) की एक विरहिणी खंभात गए हुए अपने पति को संदेश भेजना चाहती हैं। इसी समय उसे एक पथिक उस दिशा में जाता हुआ दिखाई पड़ता है। पथिक अपना परिचय देते हुए बताता है कि वह मूलस्थान (मुल्तान) से आ रहा है और अपने स्वामी का संदेश लेकर स्तम्भतीर्थ (खंभात) जा रहा है। यह जान कर वह उसे अपने पति के लिए संदेश देती है। ज्योंही पथिक चलने को होता है वह कुछ और बातें संदेश में जोड़ने के लिए कहने लगती है। इसी प्रकार कई बार होता है। अंत में जब पथिक चलने को उद्यत होता है, वह रो पड़ती है। पथिक उसे सांत्वना देते हुए पूछता है कि उसका पति किस ऋतु में प्रवास के लिए गया था। वह बताती है कि ग्रीष्म में, और तदनंतर वह विभिन्न ऋतुओं के विरह-जनित कष्टों का वर्णन करने लगती है। यह सब समाप्त होने पर पथिक जब पुनः चलने लगता है, उसका पति प्रवास से आ जाता है, और पति-पत्नी मिलते हैं।

मुञ्ज रासो—जैसा ऊपर बताया जा चुका है, इस नाम की ही रचना नहीं मिली है। मुंज और मृणालवती की प्रणयकथा 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के मुंज प्रबन्धों में आती है, जो इस प्रकार है। मुंज का कर्नाटक

के राजा तैलप से घोर वैमनस्य है, जिसके कारण मुंज उससे लड़ना चाहता है। महामात्य रुद्रादित्य के रोकने पर भी मुंज उस पर आक्रमण करता है और पराजित होकर बंदी होता है। बंदी गृह में तैलप की एक विधवा बहिन मृणालवती से उसका प्रेम हो जाता है, जिसको लेकर वह बंदी गृह से भाग निकलने का उपाय करता है, किन्तु मृणालवती उसके साथ भागना नहीं चाहती है और चाहती है कि वह बंदी गृह में बना रहे, जिससे उसका प्रणय-व्यापार चलता रहे। यह सोचकर वह तैलप से मुंज के निकल भागने का षड्यंत्र बता देती है और वह षड्यंत्र समाप्त कर दिया जाता है। तदनतर मुञ्ज की बड़ी दुर्गति की जाती है। बंदी मुञ्ज से घर-घर भीख मँगाई जाती है, यहाँ तक कि मृणालवती के घर पर भी और अन्त में उसे हाथी से कुचलवा कर मरवा डाला जाता है। अविहित प्रेम का परिणाम कितना भयंकर होता है, मुख्यतः यही इस कथा में दिखाया गया है।

पृथ्वीराज रासो—जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इसके छोटे-बड़े कई रूप है। इसके सबसे छोटे रूप में और उसमें जिसे प्रस्तुत लेखक ने प्रतियों के आधार पर निर्धारित किया है, तीन कथाएँ आती हैं : १. कैमासवध २. संयोगिता-परिणय और ३. शहाबुद्दीन-बध। प्रथम कथा मंत्री कैमास के वध की है, जो पृथ्वीराज की एक कर्णाटी दासी से अनुचित सम्बंध रखने लगा था। एक समय पृथ्वीराज जब आखेट के लिए गया हुआ था, रात्रि में कैमास उस दासी के कक्ष में जा पहुँचा। पट्टरानी को जब इसकी सूचना मिली, उन्होंने पृथ्वीराज को इसकी सूचना भेजी। पृथ्वीराज ने रातों-रात आखेट से आकर अँधेरे में ही कैमास और उस दासी का वध किया। दूसरी कथा उसके जयचन्द के साथ वैमनस्य की है। जयचंद की कथा संयोगिता पृथ्वीराज के गुणों को सुनकर उस पर अनुरक्त थी किन्तु जयचंद उसे पृथ्वीराज को नहीं देना चाहता था, इसलिए उसने एक स्वयंवर की आयोजना की और साथ-साथ राजसूय यज्ञ की भी, जिसका निमंत्रण उसने पृथ्वीराज को भी भेजा। पृथ्वीराज ने इसमें अपनी मान हानि समझी कि वह जयचंद के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हो, इसलिए उसने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया। जयचंद ने उसकी एक स्वर्ण प्रतिमा बनाकर यज्ञ-मंडप के द्वारपाल के रूप में स्थापित कर दी। पृथ्वीराज को जब यह समाचार मिला, उसे बड़ी ग्लानि हुई, और उसने छद्मवेष में सौ राजपूतों को लेकर कन्नौज के लिए प्रस्थान कर दिया। कन्नौज पहुँचकर उसने संयोगिता से सम्पर्क स्थापित किया और फिर उसका वरण कर दिल्ली की ओर चल पड़ा। चलते समय उसने अपने कवि चंद के द्वारा जयचंद को यह सूचित

कर दिया कि वह संयोगिता को वरण करके ले जा रहा था। जयचंद ने सेना को लेकर उसका पीछा किया, किन्तु पृथ्वीराज के एक-एक वीर ने क्रम-क्रम से इस प्रकार जयचंद की सेना को रोका कि पृथ्वीराज संयोगिता को लेकर दिल्ली पहुँच गया, और जयचंद को मार्ग से ही लौटना पड़ा। तीसरी कथा शहाबुद्दीन से उसके वैमनस्य की है। पृथ्वीराज संयोगिता को लाकर विलास में पड़ गया। उसकी सैनिक शक्ति अनेक युद्धों में क्षीण हो ही चुकी थी, जयचंद से उसके युद्ध में अनेक सामंत मारे जा चुके थे। विलास में पड़कर उसने सैनिक-शक्ति का पुनर्संगठन नहीं किया। शहाबुद्दीन उपयुक्त अवसर की ताक में था। उसने आक्रमण कर दिया जिसमें पृथ्वीराज पराजित और बंदी हुआ। गोरी उसे गज़नी ले गया। चंद इस बीच कहीं बाहर गया हुआ था। लौटने पर जब उसे यह ज्ञात हुआ, वह भी गज़नी पहुँचा। पृथ्वीराज की आँखें निकलवा ली गईं थीं, किन्तु पृथ्वीराज शब्द-वेध में कुशल था, यह सोचकर चंद ने गोरी को उसका शब्द-वेध कौशल देखने के लिए राजी कर लिया। इधर उसने पृथ्वीराज को राजी कर लिया कि वह गोरी के मुख से आदेश निकलने पर बाण इस प्रकार छोड़े कि गोरी का बध हो जाए। शब्द-वेध का आयोजन हुआ और पूर्व निश्चित योजना के अनुसार गोरी का बध होने के बाद पृथ्वीराज का भी प्राणांत हुआ। अपने इस छोटे से छोटे रूप में भी 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी में इसका सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है।

हम्मीर रासो—ऊपर बताया जा चुका है कि इसकी कोई प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है। इसके जो छंद 'प्राकृति पैंगलम्' में मिले हैं, उनसे यही ज्ञात होता है कि इस रचना में हम्मीर की जीवन कथा रही होगी।

बुद्धि रासो—इसमें एक प्रेम कथा है जो इस प्रकार है। चम्पावती का राजकुमार अपनी एक प्रेमिका जलधि-तरंगनी के साथ आकर समुद्र तट पर रहने लगता है। राज्य-कार्य से उसे कुछ दिनों के लिए राजधानी को जाना पड़ता है, किन्तु निश्चित अवधि के बीतने पर भी वह लौटता नहीं है, जिससे नायिका व्यथित होती है। इस समय उसकी माता राजकुमार का प्रेम-सम्बन्ध त्यागकर जीवन का सुख भोगने के लिए उत्साहित करती है, किन्तु वह अपने प्रेम पर अटल रहती है। तदनंतर राजकुमार वापस आ जाता है और दोनों मिलकर पुनः प्रेम-पूर्वक रहने लगते हैं।

परमाल रासो—इसमें पृथ्वीराज और परमाल (परमर्दिदेव) के बीच महोबा के पास हुए युद्ध की कथा है। आल्हा और ऊदल परमाल के सामंत हैं जो

उससे रूठ कर जयचंद के यहाँ रहने लगते हैं। जब पृथ्वीराज परमाल पर आक्रमण करता है। परमाल इन्हें बुलावा भेजता है। पृथ्वीराज के साथ ये वीर भयानक युद्ध करते हैं, किन्तु वीर गति को प्राप्त होते हैं, और परमाल पराजित होता है। इस कथा में जागनिक परमाल का राज कवि है, जैसे 'पृथ्वीराज रासो' में चंद पृथ्वीराज का।

राम रासो—इसमें प्रसिद्ध रामकथा कही गई है।

राणा रासो—इसमें सीसोदिया वंश के राजाओं का चरित वर्णित हुआ है, जिसमें कुम्भा, उदयसिंह, प्रतापसिंह तथा अमरसिंह के युद्धों का वर्णन विस्तार से किया गया है।

रतन रासो—इसमें रतलाम के महाराणा रतनसिंह का चरित्र वर्णित हुआ है।

कायम रासो—इसमें कायमखानी वंश के संस्थापक कायम खां और नियामत खां 'जान' तक के उनके उत्तराधिकारियों का इतिवृत्त वर्णित है। इस प्रकार यह कायमखानी वंश का इतिहास-सा है।

शत्रुसाल रासो—इसमें बूँदी के राव शत्रुसाल का वीर चरित वर्णित हुआ है।

माकण रासो—इसमें खटमल का चरित्र वर्णित है, कि किस प्रकार उसने जन-समुदाय को उत्पीड़ित और त्रस्त कर रखा है। विनोद-प्रधान होने के कारण यह रचना अपनी परम्परा में उल्लेखनीय है।

सगतसिंह रासो—इसमें महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह तथा उनके वंशजों का चरित विस्तार से वर्णित हुआ है।

हम्मीर रासो—महेश कवि और जोधराज दोनों की इस नाम की कृतियों के हम्मीर और अलाउद्दीन के वैमनस्य का कारण उसके एक निष्कासित मीर का हम्मीर के द्वारा शरण दिया जाना है। अलाउद्दीन पहले हम्मीर को चेतावनी देता है, जिसकी हम्मीर उपेक्षा करता है। तदनंतर वह स्वयं उसपर आक्रमण करता है। जब युद्ध में वह कृतकार्यता मिलती नहीं देखता है तो, वह छल का आश्रय लेता है। इसमें हम्मीर का एक कोठारी उससे मिल जाता है, और हम्मीर से कहता है कि कोठार खाली हो गया है। हम्मीर हताश होकर लड़ता है, और उसका रनिवास

जौहर करता है। इस युद्ध में हम्मीर के साथ वह मीर भी जिसे उसने शरण दी थी, लड़ते हुए मारा जाता है।

खुम्माण रासो—इसमें खुमाण वंश वीरता पूर्ण इतिहास वंश के संस्थापक खुमाण से लेकर राणा संग्रामसिंह द्वितीय तक का दिया गया है।

रासा भगवंतसिंह का—इसमें भगवंत सिंह खीची का वीरता पूर्ण चरित अंकित हुआ है।

करहिया कौ रायसौ—इसमें करहिया के परमारों तथा भरतपुर के जवाहिर सिंह के बीच हुए युद्ध का वर्णन है।

रासा भइया बहादुर सिंह का—इसमें बलरामपुर के एक शासक भैया बहादुर सिंह का वीर चरित वर्णित हुआ है।

रायसा—इसमें धारा के जसवंत सिंह तथा रीवाँ नरेश अजीतसिंह का युद्ध वर्णित हुआ है।

कलिजुग रासो—इसमें कलियुग का चरित वर्णित है। किस प्रकार कलियुग के प्रभात से समाज के सभी अंग दूषित हो गये हैं, यह दिखाया गया है।

पारीछत रायसा—इसमें दतिया के शासक महाराजा पारीछत के शासन काल की एक महत्वपूर्ण घटना बाघाइट के उस घेरे का वर्णन विस्तार से किया गया है जिसमें ओड़छा राज्य के साथ दतिया राज्य को टक्कर लेनी पड़ी।

इस प्रकार विषय की दृष्टि से देखा जाए तो दोनो रास तथा रासक परम्पराओं में विषय का बड़ा वैचित्र्य है। प्रायः यह माना जाता है कि 'रास' कोमल और रासक (रासो) कठोर भावनाओं के काव्य रूप हैं, किन्तु 'रास' नामधारी काव्यों में जितने कोमल भावनाओं के काव्य हैं, उनसे कम कठोर भावनाओं के नहीं हैं, और कोमल तथा कठोर दोनों से परे निर्वेद भाव के काव्य ही सब से अधिक हैं। रासक (रासो) परंपरा में कोमल भावनाओं के काव्य भी पर्याप्त हैं, यद्यपि अधिकता कठोर भावनाओं के काव्यों की अवश्य है, किन्तु साथ ही विनोद- प्रधान 'मांकण-रासो' जैसे काव्य भी हैं।

पुनः दोनों परम्पराओं में ही यद्यपि कथा अथवा चरित प्रधान काव्यों की प्रमुखता है, किन्तु ऐसे काव्य भी मिलते हैं जिनमें किसी कथा को नहीं लिया गया है। कथाओं में भी जहाँ एक ओर पूरे जीवन की कथा ली गई है, दूसरी ओर ऐसी रचनाएँ तक मिलती हैं जिनमें तीर्थ यात्रा मात्र का विवरण दिया गया है। चरितों

में जहाँ एक ओर महान् व्यक्तियों और शासकों का चरित वर्णित मिलता है, दूसरी ओर खटमल तक का बखान किया गया है। फलतः विषय-मूलक जितनी भी धारणाएँ इन परम्पराओं के सम्बन्ध में प्रचलित रही हैं, वे सभी भ्रमपूर्ण प्रमाणित होती हैं।

केवल दो बातों में इन रचनाओं में साम्य दिखाई पड़ता है : एक तो यह कि रचनाओं में कोई प्रबन्ध-सूत्र मिलता है ; 'उपदेश रसायन रास,' 'बुद्धि रास' और इसी प्रकार 'कलिजुग रासो' जैसी रचनाओं में यह प्रबन्ध-सूत्र बहुत शिथिल है फिर भी कुछ-न-कुछ है ; ये रचनाएँ भी स्फुट काव्य के अन्तर्गत नहीं वर्गीकृत की जा सकती हैं; दूसरी यह कि एक-दो अपवादों को छोड़ कर समस्त रचनाओं में छंद वैविध्य काफ़ी मात्रा में है। नीचे दोनों परम्पराओं की रचनाओं पर इस छंद-वैविध्य की दृष्टि से संक्षेप में विचार किया जाएगा।

भरतेश्वर बाहुबलि रास—इसमें प्रारम्भ में एक त्रिपदी मात्रिक वृत्त है जो गेय प्रतीत होता है, तदनंतर 'वस्तु' नाम से अपभ्रंश का प्रसिद्ध रड्डा छंद आता है। उसके अनंतर ठवणि १ में दोहा छंद आता है जो गेय रूप में प्रयुक्त हुआ है और ठवणि २ में उसी प्रकार सोरठा गेय रूप में प्रयुक्त होता है। ठवणि ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ में चंद्रायणा और चउपई छंद आते हैं। ठवणि १० और ११ में रोला छंद मिलता है। ठवणि १२ में धउलगीत और त्रूटक छंद आते हैं। ठवणि १४ में पुनः सोरठा गेय रूप में मिलता है ;

बुद्धि रास—इसमें प्रारम्भ में एक मात्रिक द्विपदी और तदनंतर चउपई हैं। ठवणि १ में चंद्रायणा है, जो गेय रूप में आया है। ठवणि २ में वही गेय मात्रिक त्रिपदी है जो 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' के प्रारंभ में आती है। ठवणि ३ में दोहा है, जो गेय प प में आता है।

जीव या रास—पूरी रचना में गेय मात्रिक एक द्विपदी और चउ पई का क्रम बद्ध प्रयोग हुआ है, और पूरी रचना गेय प्रतीत होती है।

चंदन बाला रास—यह भी 'जीव दया रास' की भाँति गेय मात्रिक द्विपदी और चउपई में प्रस्तुत की गई है।

रेवतंगिरि रास—इसमें प्रथम कडवक दोहे का है, द्वितीय एक मिश्र छंद का है जिसमें प्रथम दो चरण चन्द्रायणा के तथा शेष चार चरण झूलना के हैं। तृतीय कड़वक रोले का है। चौथा सोरठे का है, जो गेय रूप में आता है।

नेमि जिणंद रास (आबू रास)—यह रचना 'भासा' और 'ठवणि' में विभक्त है : समस्त भासा चउपई में हैं और समस्त ठवणियाँ मात्रिक द्विपदियों में। ठवणियों की द्विपदियाँ मुख्यतः दोहा अथवा रोला की हैं।

नेमिनाथ रास—यह रचना मुख्यतः चउपई में है ; किन्तु प्रारम्भ, बीच-बीच, और अन्त में चन्द्रायणा अथवा उससे मिलते-जुलते वृत्तों की द्विपदियाँ बारह बार आती हैं। इन द्विपदियों के अनंतर धूयउ (ध्रुवक) लिखा हुआ है, जिससे यह प्रकट है कि द्विपदियाँ गेय हैं। इसलिए सम्पूर्ण रचना गेयी प्रतीत होती है।

गयसुकमाल रास—प्रारम्भ में एक मात्रिक द्विपदी है और अंत में तीन चउपइयाँ हैं, बीच में चउपई और द्विपदी बारी-बारी से मिलते हैं। इसलिए यह रचना भी 'जीव दया' तथा 'चंदन बाला' रासों के समान **गेय** प्रतीत होती है।

सप्तक्षेत्रि रासु—प्रारम्भ में एक द्विपदी तथा एक चउपई बारी-बारी से आते हैं, तदनंतर रोला, गेय दोहा और चउपई थोड़ी-थोड़ी दूर पर मिलते हैं। रोला की माला की समाप्ति हर बार हारगीतिका के दो चरण रख कर की गई है; केवल अन्त में आने वाली रोला की माला के अन्त में हरिगीतिका के स्थान पर चन्द्रायणा का कोई रूप रक्खा गया है।

पेथड रास—इसमें प्रारम्भ में एक रोला है तदनंतर दोहा, चउपई, त्रिभंगी **लढण (गेय सोरठा)**, गेय दोहा, झूलना, एक प्रकार गेय छन्द और गेय दोहा माला **बद्ध रूप में** मिलते हैं।

कच्छूलि रास—प्रारम्भ में एक मात्रिक द्विपदी आती है, जैसे भरतेश्वर बाहुबली रास' में आई हुई है। तदनंतर वस्तु (रड्ड), त्रिपदी, चउपई, जिसके साथ चंद्रायणा या उससे किसी मिलते हुए छंद की पंक्तियाँ भी कुछ-कुछ दूरी पर रखी हुई हैं, वस्तु (रड्ड), दोहा तथा रोला छन्द प्रयुक्त मिलते हैं।

समरा रासु—प्रारम्भ में रोला की पंक्तियाँ हैं, तदनतर बारह भाषाएँ आती हैं, जिनमें प्रयुक्त छद क्रमशः हैं : (१) गेय दोहा, (२) रोला, (३) एक प्रकार का गीत, (४) रोला, (५) चउपई, (६) रोला (७) एक प्रकार का मात्रिक छंद, (८) एक प्रकार का गीत (६) दोहा-गीत, (१०) एक प्रकार की मात्रिक त्रिपदी जो 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' के प्रारम्भ में आई है, (११) सोरठा गीत, (१२) एक अन्य गीत।

पंचपंडव चरित रास—प्रारम्भ एक त्रिपदी से होता है जो 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' में भी प्रारम्भ में आई हुई है। तदनंतर चौदह ठवणियाँ आती हैं, जिनमें क्रमशः प्रयुक्त छंद है : (१) द्विपदी + चउपई का एक मिश्र छंद, (२) रोला, (३) दोहा, (४) चउपई, (५) एक प्रकार का गीत, (६) सोरठा गीत, (७) सोरठा, (१०–१३) चउपई,

(१४) एक प्रकार का गीत। इनके अतिरिक्त प्रत्येक ठवणी के पूर्व वस्तु (रड्ड) मिलता है।

गौतम स्वामी रास—यह छः ढालों में विभक्त है। विभिन्न ढालों में क्रमशः प्रयुक्त छंद हैं : (१) रोला, (२) चउपई, (३) गेय दोहा (४) गेय सोरठा, (५) एक प्रकार का गीत, (६) एक प्रकार त्रिपदी जो 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' के प्रारम्भ में मिलती है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक ढाल के पूर्व वस्तु (रड्ड) मिलता है।

कुमार पाल रास—सम्पूर्ण कृति रोला, दोहा और वस्तु (रड्ड) छंदों में रची गई है। वस्तु प्रायः बीच-बीच में एक-एक करके ही आता है, केवल एक स्थान पर आठ वस्तु एक-साथ आए हैं।

कलिकाल रास—प्रारम्भ में एक द्विपदी है, तदनन्तर चउपई, एक प्रकार की त्रिपदी जो 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के प्रारम्भ में आती है, दोहा, दोहा गीत, दोहा, दोहागीत, और रोला छदों की मालाएँ मिलतीहैं। इन मालाओं के बीच-बीच में प्रायः वस्तु (रड्ड) छंद रख दिया गया है।

बीसल देव रास—इसमें केदार राग में गाए जाने के लिए प्रयुक्त एक गेय छंद है जो प्रारम्भ से अन्त तक मिलता है। यह एक मिश्र छंद है, जिसमें प्रथम दो चरण १७ या १८ मात्राओं के हैं तद नंतर क्रमशः १३ और १७ अथवा १४ और १८ मात्राओं के चरण आते हैं।

इस प्रकार इस परम्परा में छंद-वैविध्य का प्रयास पर्याप्त रूप से दिखायी पड़ता है : या तो अनेक प्रकार के छंद ही प्रयुक्त किए जाते हैं, अथवा किसी मिश्र छद का गेय रूप में प्रयोग किया जाता है। इसका एक मात्र अपवाद 'उपदेश रसायन रास' है, जिसमें एक मात्र 'चउपई' छद का प्रयोग हुआ है। मूल रचना में कहीं ऐसा भी नहीं ज्ञात होता है कि इस चउपई को गेय रूप में प्रयुक्त किया गया है, किन्तु रचना के एक प्राचीन टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने टीका के प्रारम्भ में ही रचना को 'रासक' काव्य माना है और लिखा है कि यह पज्झ-टिका बन्ध काव्य सभी रागों में गाया जा सकता है। किन्तु इस प्रसंग में यह भी विचारणीय है कि रचना को कहीं भी 'रास' या 'रासक' नहीं कहा गया है, 'रसायन' ही कहा गया है। असम्भव नही कि यह 'रसायन' 'रास' और 'रासक' से एक भिन्न काव्य रूप रहा हो, जिसमें छंद-वैविध्य का कोई दृष्टिकोण न रहा हो।

रास-परम्परा की रचनाएँ अधिकतर छोटी हैं और छंद-वैविध्यबहुत अधिक नहीं है, इसलिए उनकी छंद-योजना के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण यहाँ देना सम्भव हुआ है, रासक (रासो) परम्परा की रचनाएँ अधिकतर बढ़ी हैं, और उनमें प्रायः छंद-वैविध्य भी अधिक है, इसलिए रासक (रासो) परम्परा की छंद-योजना के विषय में संक्षेप में ही उल्लेख किया जा सकता है। दूसरे, रास-परम्परा की रचनाएँ प्रायः सभी प्रकाशित हैं, जब कि रासक (रासो) परम्परा की अनेक रचनाएँ अप्रकाशित हैं, इसलिए इसकी छंद-योजना के सम्बन्ध में प्रायः प्राप्त सूचनाओं पर निर्भर होना पड़ेगा, और यह सूचनाएँ अति संक्षिप्त हैं।

संदेश रासक—इस २२३ छंदों की रचना में निम्नलिखित छंद प्रयुक्त हैं : अडिल्ला, मडिल्ला, रासा (आहाणक), चउपइय, लंकोडय, पद्धडिया, कव्व (काव्य), कामिणी मोहन, दुवई (द्विपदी), रयणिज्ज, दोहा, चूडिल्लय, दो मिलय, रड्डा, वत्थु (छप्पय), खडहडय, गाहा, खंधय, मालिनी, नंदिणि, भमरावलि।

मुञ्ज रासो—'पुरातन प्रबंध संग्रह' के 'मुञ्जरास प्रबन्ध' में उद्‌धृत १६ छंद निम्नलिखित ६ वृत्तों के हैं : दोहा, शिखरिणी, गाथा, अकष्टुप तथा दो अन्य वर्णवृत्त।

पृथ्वीराज रासउ—लगभग ३६० छन्दों के प्रस्तुत लेखक द्वारा निर्धारित रूप में निम्नलिखित २६ वृत्त हैं : दोहरा (दूहा), कवित्त (छप्पय), रासा, मुडिल्ल, पद्धडी, गाथा, अडिल्ल, वस्तु, चउपई, गाथा मुडिल्ल, त्रिभंगी, सारिका, भुजंग (भुजंग प्रयात), श्लोक, अर्ध नाराच, नाराच त्रोटक, साटका, डंडमाल, आर्या, मोतीदास, रुपया, वसंत तिलक, यमरावलि, रसावला, तथा विराज।

हम्मीर रासो—'प्राकृतपैंगलम्' में उद्‌धृत आठ छंद निम्नलिखित आठ वृत्तों के हैं : गाहिणी, रोला, छप्पय, कुंडलिआ, गअणंग, लीलावाई, जलहरण तथा किलाचक्क (क्रीड़ाचक्र)।

बुद्धिरासो—इसका पाठ प्रकाशित नहीं है। सूचना में कहा गया है कि १४० छंदों की इस रचना में दोहे, छप्पय, गाहा, पाधड़ी, मोतीदाम, मुडिल्ल आदि छंद हैं।[1]

1. राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ७६।

परमाल रासो—'परमाल रासो' की छंद-योजना प्रायः 'पृथ्वीराज रासो' का अनुसरण करती है, क्योंकि वह उसी के 'महोबाखंड' के रूप में रचा गया है।

राउ जैतसी रो रासो—६० छंदों की इस रचना में दोहा, मोतीदाम और छप्पय वृत्तों का प्रयोग हुआ है।

विजयपाल रासो—इसका कोई प्रामाणिक रूप उपलब्ध नहीं है। प्राप्त रूप में छप्पय, मोतीदाम, पद्धरी, दोहा तथा चौपाई छंद प्रमुख हैं।

राम रासो—१६०० छंदों की इस रचना में गाथा, दोहा आदि विविध छंदों का प्रयोग हुआ है, बीच-बीच में 'गीतावली' की शैली के पद भी आते हैं।[1]

राणा रासो—८७५ छंदों की इस रचना में, कहा गया है, 'पृथ्वीराज रासो' की भाँति रसावला, विराज, साटक आदि प्राचीन छदों का प्रयोग हुआ है।[2]

रतन रासो—इस रचना की छंद-योजना के बारे में कुछ नहीं कहा गया है।[3]

कायम रासो—१०४५ छंदों की इस रचना में दोहा, सवैया, चौपाई, अर्ध भुजंगी, नाराइच, त्रिभंगी, धवल, गैनंग, भुजंगी और पेड़ी छंद आते हैं। इनमें से सब से प्रमुख छंद दोहा है।[4]

शत्रुसाल रासो—इन रचना की छंद-योजना के बारे में स्पष्ट कुछ नहीं कहा गया है।[5]

मांकण रासो—३६ छंदों की इस रचना में पाँच विविध वृत्त प्रयुक्त हुए हैं।[6]

सगतसिंह रासो—इसमें दोहा, भुजंगी, कवित्त (छप्पय) आदि विविध छंद प्रयुक्त हुए हैं।[7]

हम्मीर रासो (महेशकृत)—इसके मुख्य छंद चउपई, दोहा और वस्तु हैं।

---

१. हिंदी खोज विवरण (ना० प्र० स०) १६०१, सूचना ८०।

२. राजस्थान में हिंदी के ह० ग्रंथों की खोज-प्रथम भाग, पृ० ११८।

३. वही, चतुर्थ भाग, पृ० २२३-२२४।

४. दे० राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर से प्रकाशित संस्करण।

५. मोती लाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १५८।

६. राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४, पृ० ६८।

हम्मीर रासो (जोवराज कृत)—१००० छंदों की इस रचना में सत्रह प्रकार के वृत्तों का प्रयोग हुआ है, जिनमें से प्रमुख हैं : पद्धरी, भुजंग-प्रयात, छप्पय, त्रोटक चौपाई, हनूफाल, मोतीदाम, लघुनाराच, नाराच ।

खुम्माण रासो—इसमें चउपई, दूहा, कवित्त (छप्पय), गाहा आदि विविध छंद प्रयुक्त हुए हैं ।

रासा भगवंत सिंह का—१०४ छंदों की इस रचना में पन्द्रह प्रकार के वृत्त प्रयुक्त हैं, जिनमें से प्रमुख हैं : दोहा, छप्पय, त्रोटक, भुजंग-प्रयात, गीतिका, मत्तगयंद सवैया, चंद्रकला, त्रिभंगी, ससिवदना, संखनारी तथा सर्वकल्यान ।

करहिया कौ रायसौ—इसमें तेरह प्रकार के वृत्त प्रयुक्त हैं, जिनमें से प्रमुख हैं : दोहा, सवैया, सोरठा, छप्पय, पद्धरी और चौपाई ।

रायसा—इसमें छप्पय, दोहा, भुजंगप्रयात आदि छंद प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं ।

कलिजुग रासो—इसकी छंद-योजना के सम्बंध में निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है ।[८]

पारीछत रायसा—३७६ छंदों की इस रचना में छप्पय, दोहा, सोरठा, छंद, कवित्त, भुजंगी, त्रिभंगी, त्रोटक, मोतीदाम, कुंडलिया, नराच, तोमर तथा क्रवान छंदों का प्रयोग हुआ है ।

रासक (रासो)-परम्परा की छंद-योजना पर इस प्रकार यदि दृष्टि डाली जाए तो ज्ञात होगा कि एक तो रास परम्परा की अपेक्षा इसमें अधिक प्रकार के वृत्तों का प्रयोग हुआ है और जिन रचनाओं के संबंध में हमें निश्चित रूप से ज्ञात है, उनमें से एक मात्र महेश कृत 'हम्मीर रासो' ऐसी है, जिसमें यह छंद-वैविध्य नहीं है या नाम मात्र को है, शेष समस्त रचनाओं में छंद-वैविध्य बहुत स्पष्ट है। दूसरे यह कि जब कि रास परम्परा में गेय छंदों और गीतों की बहुतायत है, इस परम्परा में गेय छंदों और गीतों का प्रयोग एकदम नहीं किया गया है। 'राम रासो' में कुछ पद अवश्य मिलते हैं, किन्तु हमें उस प्रकार के गीत एक भी नहीं मिलते हैं जैसे रास परम्परा में हैं ।

---

७. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग ३, पृ० १०७-१०८।

८. हिंदी खोज विवरण (काशी ना० प्र० स०) १९०९-११, सूचना २६२ ।

फलतः दोनों परम्पराओं में समानता इसी बात में है कि छंद-वैविध्य इस काव्य रूप में व्यापक रूप से मिलता है। ऐसा नहीं कि अन्य काव्य रूपों में छंद-वैविध्य न मिलता हो, किन्तु मात्रा में वह अपेक्षाकृत बहुत कम है। अपवाद-स्वरूप ही किसी-किसी रचना में वह इस मात्रा में मिलता है, उक्त काव्यरूप में व्यापक रूप से नहीं मिलता है। और दोनों परम्पराओं में अन्तर इस बात में है कि रास-परम्परा में अधिकतर गेय छंद प्रयुक्त हुए हैं, केवल कुछ रचनाओं में बीच-बीच में कुछ पाठ्य छंद भी मिल जाते हैं, किन्तु रासक'रासो' परंपरा में उस प्रकार के गेय छंद नहीं मिलते हैं जिस प्रकार के रास-परम्परा में मिलते हैं।

यह छंद-वैविध्य ही इस काव्यरूप का एक मात्र लक्षण बहुत प्राचीन काल से रहा है। विरहाङ्क ने 'वृत्त जाति समुच्चय' (४-३०) में कहा है :

अडिलाहि दुवहएहिं व मत्तारड्डुहिं तहअ ढोसाहिं।
बहुएहिं जो रइज्जइ सो भण्णइ रासओ णाम ॥

अर्थात् जिसमें बहुत से अडिल्ला, दुवहअ, मात्रारड्डा, और ढोसा छंद होते हैं, ऐसी रचना रासक कहलाती है।

स्वयंभू (सं० ६५० के लगभग) ने 'स्वयंभूछंदस्' (सं० ८-४६) में कहा है।

घत्ता छड्डणिआहिं पद्धडिया [हिं] सुअण्ण रूएहिं।
रासाबंधो कव्वे जण-मण अहिराम होइ ॥

अर्थात् काव्य में रासाबन्ध अपने घत्ता, छड्डणिआ (छप्पय), पद्धडिआ, तथा अन्य रूपकों (वृत्तों) के कारण जन मन अभिराम होता है।

'रासक' के इसी लक्षण की ओर 'संदेशरासक' का कवि अब्दुर्रहमान भी संकेत करता है, जब मूलस्थान का वर्णन करते हुए वह उसमें (छंद ४३१) कहता है :—

कह बहुरूविणि बद्धउ रासवि भा सियइ।

अर्थात् कहीं पर वहाँ बहुरूपक निबद्ध 'रासक' भाषित होता रहता है।

संदेश रासक के पाठ और अर्थ-संशोधन के सुझाव

अब्दुल रहमान रचित 'सन्देश रासक' भारतीय साहित्य के मध्य युग की एक अत्यन्त सरस और महत्वपूर्ण रचना है। इसे प्रकाश में लाने का श्रेय अपभ्रंश के अन्यतम विद्वान् मुनि श्री जिनविजय जी को है। तीन प्रतियों की सहायता से, जिन्हें उन्होंने ए० बी० और सी० कहा है, उन्होंने इसका सम्पादन कर इसे सं० २००१ में भारतीय विद्याभवन, बंबई से प्रकाशित किया था। मूल पाठ और पाठांतरों के अतिरिक्त उन्होंने इस संस्करण में रचना को दो संस्कृत टीकाएँ भी प्रकाशित की हैं, जिन्हें टिप्पणक और अवचूरिका कहा गया है। इस संस्करण में उन्होंने एक संक्षिप्त प्रस्तावना भी दी है, जिसमें रचना और उसके समय आदि से सम्बन्धित प्रश्नों पर बड़ी योग्यतापूर्वक विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त इस संस्करण में डॉ० हरिवल्लभ भायाणी के द्वारा लिखित एक भूमिका है जिसमें रचना के व्याकरण तथा छंद-विधान आदि पर बड़ी पूर्णता और वैज्ञानिकता के साथ विचार किया गया है। संस्करण के अन्त में डॉ० भायाणी ने रचना का एक शब्दकोश भी दिया है, जिसमें शब्दों की व्युत्पत्ति तथा उनका अर्थ देने का उन्होने एक संक्षिप्त प्रयास किया है। इस प्रकार रचना के महत्व के अनुरूप ही इस संस्करण में उसे अधिक से अधिक आलोचनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का एक अत्यन्त सराहनीय प्रयास किया गया है।

इधर उसका एक अन्य संस्करण भी प्रकाशित हुआ है, जिसका श्रेय डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी को है। इसे हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बंबई ने प्रकाशित किया है। डॉ० द्विवेदी को इसकी एक अन्य प्रचीन प्रति आमेर शास्त्र भंडार से जयपुर के प्रसिद्ध जैन साहित्य-सेवी श्री कस्तूरचंद कासलीवाल के द्वारा प्राप्त हो गई थी, जो पूर्ववर्ती प्राप्त प्रतियों से किंचित् भिन्न परम्परा की थी। उसका उपयोग करते हुए डॉ० द्विवेदी ने आवश्यक विस्तार के साथ रचना के पाठ और

अर्थ के अनेक स्थलों पर संशोधन के मौलिक सुझाव नागरी प्रचारिणी पत्रिका के कुछ अंकों में प्रकाशित किये थे। संस्करण में उनके वे समस्त सुझाव प्रस्तावना के रूप में आ गए हैं और इन सुझावों से लाभ उठाते हुए श्री विश्वनाथ त्रिपाठी ने रचना का पाठ और अर्थ भी सम्पादित किया है। यह कहना अनावश्यक होगा कि डॉ० द्विवेदी के द्वारा प्रस्तुत किए गए इन सुझावों से रचना के पाठ और अर्थ से सम्बन्धित अनेक अंधकार पूर्ण स्थलों पर अत्यन्त उपयोगी प्रकाश पड़ा है और साहित्य-प्रेमियों को इन सुझाओं पर भली भाँति विचार करना चाहिए।

रचना को तीन-चार वर्ष पूर्व जब मैंने पहिली बार पढ़ा था, इसी प्रकार मुझे भी इसके पाठ और अर्थ के कुछ स्थलों के सम्बन्ध में लिखने की इच्छा हुई थी, किन्तु उस समय जब ज्ञात हुआ कि द्विवेदी जी उसके पाठ और अर्थ पर कार्य कर रहे हैं, उसके प्रकाशन की प्रतीक्षा में मैं रुक गया और अब रचना के पाठ और अर्थ के सम्बंध के अपने उन सुझावों को प्रस्तुत कर रहा हूँ जो फिर भी विचारणीय लगे। फलतः इस लेख में मैं रचना के उन्हीं स्थलों को ले रहा हूँ जहाँ पर उपर्युक्त दोनों संस्करणों का ही पाठ अथवा अर्थ संतोषप्रद नहीं प्रतीत हुआ है।

इस में पा० स० म० संकेत 'पाइअसद्द-महण्णवो' नामक प्रसिद्ध प्राकृत कोश के लिए है, जो हरगोविन्द दास त्रिकमचंद सेठ द्वारा सं० १९९५ में संपादित औरा प्रकाशित हुआ था। रचना के विभिन्न स्थल छंद अथवा छंदतथा चरण-संख्य द्वारा निर्दिष्ट किए गए हैं। शेष प्रस्तावनादि का निर्देश पृष्ठ-संख्या द्वारा किया गया है।

पाठ-संशोधन के सुझाव

(१)

रयणायर धर गिरि तरुवराइँ गयणंगणंमि रिक्खाइं।
जेणऽज्ज सयल सिरियं सो बुहयण वो सिवं देउ।१।।

संस्कृत टीकाकारों ने उद्धृत द्वितीय चरण के 'अज्ज' का रूपान्तर 'इत्यादि' किया है, जो भाषा के नियमों के अनुसार संभव नहीं है। इसलिए डॉ० द्विवेदी ने अज्ज <आर्याः = श्रेष्ठ जन अर्थ लगाकर शब्द का प्रयोग संशोधन के रूप में माना है (प्रस्ता० २) किन्तु 'बुहयण' (बुधजन) संबोधन के रूप में आता ही है। इसलिए मेरा सुझाव है कि इसे 'अज्झ' होना चाहिए, जो कभी पुल्लिग में 'यह'

के अर्थ में प्रयुक्त होता था और जिसका स्त्रीलिंग रूप 'अज्झा' है (पा० स० म०)। 'ज्झ' का भूल से 'ज्ज' होजाना पुरानी लिखावट में सुगमता से संभव था।

(२)

पंडित पवित्थरगु मणुजणंमि कोलिय पयासिउ।
कोऊहलि भासिअउ सरल भाइ संनेह रासउ॥१६॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'मणुजणंमि' का रूपान्तर टिप्पणी में 'मनसि ज्ञात्वा' और अवचूरिका में 'मनुष्य लोके' किया गया है। डॉ० द्विवेदी ने अवचूरिका वाले अर्थ को स्वीकार करते हुए सुझाव दिया है कि पाठ 'मणुअजंमि'='मनुष्य जन्म में' होना चाहिए (प्रस्ता० २)। किन्तु ये दोनों अर्थ प्रसंग में पूर्ण रूप से जमते नहीं प्रतीत होते हैं। मेरा सुझाव है कि मूल पाठ 'मणुज्जणंमि' <मनोज्ञ+नर्मन्= 'मनोज्ञ विनोद'था, जिसका पाठ लेखन-प्रमाद 'मणुजणंमि' हो गया। द्वित्व के स्थान पर एक वर्ण से काम चलाने की प्रथा मध्ययुग में बहुत व्यापक थी, जिसके कारण यह भूल संभव हुई लगती है।

(३)

उत्तंग थिर थोरथणि विरुडलक्क धयरट्ठ पउहर।
दीणाणण पहु णिहइ जल पवाह पवहंति दीहर॥२४॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'विरुडलक्कक' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'भ्रमरी मध्य मध्या' है और 'विरुडलक्कि' पाठ के साथ उसका अर्थ हिन्दी टीका में 'जिसकी कटि भिड़ के समान पतली है' किया गया है।

हिन्दी संस्करण में 'लक्क' के स्थान पर "लक्कि" पाठ संभवतः रचना की जयपुर की प्रति के आधार पर किया गया है, यद्यपि यह स्पष्ट कहा नहीं गया है। रचना के सम्पादक मुनि जिनविजय जी ने नाहटा जी की एक खंडित प्रति में 'लक्क' के स्थान पर 'लंक' पाठ होने का उल्लेख किया है (भूमिका १०६)। मेरी समझ में 'लंक' से ही पाठ बिगड़ कर 'लक्क' हुआ है। मध्य युग में बिन्दु से जिस प्रकार अनुस्वार का कार्य लिया जाता था, वैसे ही उससे व्यंजन द्वित्व का भी कार्य लिया जाने लगा था, कदाचित् इसीलिए इस प्रकार का पाठ-प्रमाद सम्भव हुआ।

(४)

ऊपर उद्धृत द्वितीय चरण के 'णिहइ' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'पश्यति' और हिन्दी टीका में 'निहार रही है' किया गया है। प्राकृत में 'देखना' के अर्थ में 'णिअ' और 'णिहा' आते हैं, 'णिह' नहीं (देखिए पा० स० म०) है। डॉ० द्विवेदी ने 'णिअ' से 'णिह' की सम्भावना मान ली है, किन्तु मेरी समझ में 'णिहाइ' का 'आ' की मात्रा के भूल से छूट जाने के कारण 'णिहइ' हो गया हो, यह संभावना भी विचारणीय है।

(५)

णेवर चरण विलग्गिवि तह पहि पंखुडिय॥२७॥

संस्कृत टीकाओं में इस चरण में आए हुए 'पंखुडिय' का अर्थ 'पतिता' और हिन्दी टीका में 'छितरा गया' किया गया है। किन्तु पंखुडिय' का एकही अर्थ मिलता है: पंख या पत्र। वांछित अर्थ के लिए शब्द होना चाहिए 'पक्खुडिअ' ∠प्रखण्डित (पा० स० म०)। सी० प्रति का पाठ 'पक्खडिअ' है जो 'पक्खुडिअ' के अधिक निकट है। इस भूल का कारण भी विन्दु का अनुस्वार के अतिरिक्त व्यञ्जन-द्वित्व-लेखन के लिए प्रयुक्त होना ज्ञात होता है।

(६)

पडि उट्ठिय सविलक्ख सलज्जिर संझसिय ॥२८॥

टिप्पणक में इस चरण के 'संझसिय' का अर्थ 'सम्भ्रमिता' अवचूरिका में 'संझसिता' और हिन्दी टीका में 'उत्क्षिप्ता' किया गया है। 'संझसिता' प्राकृत शब्द का संस्कृताभास मात्र है। मेरा अनुमान है कि शब्द है 'सज्झसिय' = भीत। सज्झस >साध्वस = भय, डर है (पा० स० म०)। पाठ- विषयक यह भूल भी विन्दु के अनुस्वार के अतिरिक्त व्यञ्जन-द्वित्व- लेखन के लिए प्रयुक्त होने के कारण हुई ज्ञात होती है: सज्झसिय → सझ्झसिय → संझसिय। डॉ० द्विवेदी ने 'झसिय' = 'पर्यस्ता' के द्वारा 'संझसिय' का अर्थ लगाया है (प्रस्ता० २३), किन्तु पर्यस्तता गिरने तक के प्रसंग में जितनी संगत लगती है, गिर कर उठने के प्रसंग में उतनी संगत नहीं लगती है। यहाँ प्रसग गिर कर उठने का है।

(७)

तुच्छं रोम तरंगं उव्विन्न. कुसुम नलएसु ॥३६॥

इस चरण के 'उविन्न' का रूपान्तर संस्कृत टीकाओं में 'उद्भग्न' किया गया है ; हिन्दी टीका में पाठ 'उब्बिन्न' मानते हुए रूपांतर 'उद्धिन्न' किया गया है। किन्तु 'उद्भग्न' का प्राकृत रूप कदाचित् 'उब्भग्ग' होना चाहिए : 'उद्भिन्न' का तो 'उब्भिन्न' होता ही है (पा० स० म०)। 'उव्विन्न' < उद्विग्न = खिन्न, भीत, घबड़ाया हुआ है (पा० स० म०), और इसी अर्थ में यह इस रचना में भी अन्यत्र प्रयुक्त हुआ है :—

भिञ्ञरी णिरु दीसहि उव्विन्नमिय नयण ॥६८॥

किन्तु प्रसंग 'उब्बिन्न, या 'उद्विग्न' का नहीं है। सी० प्रति में पाठ 'उब्बिल्ल' है। 'उव्विल्ल' = फैलना, पसरना (पा० स१ म०) के अर्थ में क्रिया- रूप में प्रयुक्त मिलता है। उसका विशेषण के रूप में प्रयोग होने पर अर्थ 'फैला' या 'पसरा हुआ' होना चाहिए। यहाँ पर ठीक पाठ कदाचित् 'उव्विल्ल' है, जो 'फैला' या 'पसरा हुआ' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह भूल 'न्न' 'ल्ल' के किंचित् आकृति-साम्य से उत्पन्न हुई ज्ञात होती है।

(८)

कह व ठाइ आसीसिय चाइहि दयवरिहिं ।
रामायणु अहिणवियअइ कत्थ वि कयवरिहिं ॥४४॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'दयवर' का रूपान्तर संस्कृत में टीकाओं 'द्विज वर' अर्थ हिन्दी टीका में 'ब्राह्मण' किया गया है। 'द्विज' का प्राकृत रूप 'दिअ' मिलता है (पा० स० म०), इसलिए पाठ संभवतः 'दियवरिहि' रहा होगा, जो कि 'दि' की इकार की मात्रा के छूट जाने से 'दयवरिहि' हो गया होगा, अथवा परवर्ती चरण के 'कयवरिहि' के अनुकरण में 'दयवरिहि' बना लिया गया होगा।

(६)

आयण्णहि सुसमत्थ पीण उन्नय थणिय ।
चल्लहि चल्ल करंतिय वत्थवि णट्टणिय ॥४५॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'चल्लहि चल्ल करंतिय' का अर्थ संस्कृत टीकाकारों ने 'चल चल शब्द कुर्वन्त्यः' किया है। किन्तु 'चल चल' शब्द करना नृत्य में कोई चमत्कार नहीं रखता है, इसलिए डॉ० द्विवेदी ने सुझाव दिया है कि 'चल्ल' का अर्थ कटी वस्त्र लेते हुए 'चल्लहि चल्ल करंतिय' का अर्थ लेना चाहिए 'जघनांशुक् को चालित् करती हुई'। किन्तु मेरा अनुमान है कि 'चल्ल' के स्थान पर पाठ 'चल्लि' होना चाहिए, जो नृत्य की एक गति होती है (पा० सा० म०) और इसी 'चल्लि' का इकार की मात्रा के छूटने से 'चल्ल' हो गया होगा। 'चल्लि' के साथ चरण का अर्थ होगा : कहीं पर 'चल्लि' करती हुई नर्तकियों को।

(१०)

तुह विरह पहर संचूरिअइं विहडंति जं अंगाइं।
तं अज्ज कल्ल संघडण ओसहे णाह तग्गंति ॥७२॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'ओसहे' का अर्थ संस्कृत टीकाकारों ने 'औषधप्रभावेन' किया है। डॉ० द्विवेदी का सुझाव है कि 'ओसहे' के स्थान पर पाठ 'आसहे' होना चाहिए, क्योंकि विरह-प्रहार-संचूर्णित अंगो का जोड़ने वाला मिलन नहीं, मिलन की आशा ही हो सकती है। किन्तु 'आसहे' जैसे अति परिचित शब्द के स्थान पर एक अपेक्षाकृत कम परिचित शब्द 'ओसहे' का हो जाना कम सम्भव लगता है। मेरी समझ में पाठ 'उसहे' रहा होगा, जो कि ए० प्रति में आया भी है। 'उसह' का एक अर्थ 'वेष्ठन-पट्ट' होता है (पा० स० म०)। प्रसंग यहाँ पर टूटी हुई हड्डियों को किसी प्रकार जोड़ रखने का है। 'वेष्ठन-पट्ट' ही इस कार्य में समर्थ होता है, औषध नहीं। 'मिलन' से आशय 'मिलन की सम्भावना' या 'मिलन की आशा' का ही लिया जाना चाहिए, यह प्रकट है। उ और ओ का यह भ्रम मध्य युग की लेखन-शैली की एक अति सामान्य त्रुटि रही है, कारण यह है कि दोनों के लेखन में अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म था, और पीछे तो कभी-कभी 'उ' से ही 'ओ' के लिखने का भी काम लिया जाने लगा था।

(११)

भरवि नवयरंगे इक्कु कुंभो धरंती।
हियउ तह पडिल्लो बोलियंतो विरत्तो ॥१००॥

'पडिल्लो' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'क्षिप्त्वा' और हिन्दी टीका में 'डालकर' किया गया है। किन्तु शब्द मूलतः 'पडिअलि ∠प्रतित्वरिन्=त्वरित, वेगयुक्त (पा० स० म०) है, जो कि 'पडिल्ली', 'पडिल्लिउ' और 'पडिल्लिय' रूपों में रचना में अन्यत्र भी आया हुआ है :—

जं सित्तउ थोरंसुयहि जलइ पडिल्ली झत्ति ।।८६।।
विरह हुयासि झलक्किउतं पडिलिउ झडइ ।।१०६।।
गय जलरिल्लि पडिल्लिय तिरिथहिं ।।१६२।।

ऐसा लगता है कि पाठ 'पडिल्ली' था, जिसकी 'ई' की मात्रा लेखन या पाठ-प्रमाद से 'ओ' की मात्रा हो गई; अथवा पाठ 'पडिल्लिउ' था जो कमशः पडिल्लउ7 पडिल्लु7पडिल्लो बन गया।

(१२)

जइ पिम्म विओइ विसंठुलयं हियय ।।११५।।

समस्त टीकाकारों ने इस चरण के 'विसुंठलयं' को 'विसंस्थूलम्' का प्राकृत रूप माना है, किन्तु प्राकृत में विसंस्थूल7विसंठुल हुआ है (पा० स० म०)। अन्यत्र रचना में भी यह इसी प्रकार आया है :—

वलिवि पत्त णिय भुवणि विसंठुल विहलमणु ।।१३०।।

इसलिये मेरा सुझाव है कि पाठ 'विसुंठलय' के स्थान पर 'विसंठुलय' होना चाहिए। ऐसा लगता है कि कभी भूल से 'उ' की मात्रा 'ठ' से हटकर 'स' पर लग गई, जिससे यह भूल हो गई।

(१३)

वंक कड क्खिहि तिक्खिहि मयणाकोयणिहि।
भणु वट्टहि कइ दियहि झुरंतिहिं लोयणिहिं ।।१२३।।

उद्धृत द्वितीय चरण के 'झुरंतिहिं' का अर्थ टिप्पणक में 'वर्षन्ती', अवचूरिका में 'क्षरद्भ्यां' और हिन्दी टीका में 'जल बरसा रही' किया गया है। किन्तु इस

आशय के लिए शब्द होना चाहिए 'झरंतिहि', जैसा इसके पूर्ववर्ती छंद में ही आया है :—

सरय रयणि पंचचक्खु झरंतउ अमिय भरु ॥१९२॥

'झुर' क्लिश् के अर्थ में प्रयुक्त होता है (पा० स० म०) और रचना में अन्यत्र भी इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है :

पिय विरह विओए संगम सोए दिवस रयणि झूरंत मणे ॥६५॥

'झरंतिहिं' के 'झ' में उकार की मात्रा स्मृतिभ्रम से लगने के कारण यह भूल हुई ज्ञात होती है।

(१४)

सलिलिहि वर सालूरिहि फरसिउ रसिउ सरि ॥१४४॥

उद्धृत चरण के 'फरसिउ' का रूपान्तर समस्त टीकाओं में 'परुष' किया गया है। किंतु 'परुष' के लिए प्राकृत रूप 'फरुसउ' होना चाहिए (पा० स० म०)। सम्भवतः अधिक परिचित 'फरिसिय' <स्पृष्ट के भ्रम से यह भूल हुई है। 'सन्देश रासक' में ही अन्यत्र 'फरिसु' और 'फरिसिउ' 'स्पर्श' औ 'स्पृष्ट्वा' के अर्थों में आए हैं:—

अंगिहिं तुह अलहंत धिट्ठ करयल फरिसु ॥१६१॥
तं झंखरु विरहिणिहि अंगु फरिसिउ दहइ ॥१३२॥

(१५)

इम विलवंती कहव दिण पाइउ।
गेउ गिरंत पढंतह पाइउ ॥१५७॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'कहव दिण पाइउ' का अर्थ टिप्पण में 'वर्षा प्रान्त दिन समाप्तम्', अवचूरिका में 'वर्षा प्रान्त दिन प्राप्तम्' और हिन्दी टीका में 'कुछ दिन बिताए' किया गया है। 'कहव' शब्द निरर्थक है; होना चाहिए

'कहवि ∠कहंपि'∠कथमपि=किसी प्रकार से (पा० स० म०), जैसा वह रचना में अन्यत्र भी आया है—

ता किं वाडि विलग्गा मा विअसउ तुंबिणी कहवि ॥१४॥

आसासिज्जइ कह कहवि सइवत्ती रसिएहिं ॥१८॥

ऐसा लगता है कि 'कहवि' के 'इ' की मात्रा कभी भूल से छूट गई।

(१६)

गोसुय रंत मिल्हि सिज्जासणु।

मणि सुमिरंत विरहग्गिन्नासुण ॥१५८॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'रंत' को समस्त टीकाकारों ने छोड़ दिया है। शब्द 'रत्त'∠रक्त=लोहित है। यह अन्यत्र भी इसी प्रकार आया है :—

सिय सावरत्त पुप्फंवरे ति ॥२०२॥

यह भूल भी विन्दु के अनुसार तथा व्यञ्जन-द्वित्व दोनों के लिखने के लिए प्रयुक्त होने के कारण हुई लगती है।

(१७)

दारय कुंडवाल तंडव कर।

भमहि रच्छि वायंतय सुंदर ॥१७५॥

प्रथम चरण में आने वाले 'कुंडवाल तंडव' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'कुंडल' किया गया है, और हिन्दी टीका में 'कुंडलाकार नृत्य'। किन्तु 'कुंडवाल' न 'कुंडल' से व्युत्पन्न हो सकता है और न 'कुंडलाकार' से। 'कुंडवाल' का कोई अन्य अर्थ यहाँ सम्भव भी नहीं लगता है। 'कुंड' संभवतः 'कुड्ड' है। जिसका अर्थ आश्चर्य, कौतुक, कुतूहल होता है (पा० स० म०)। 'कुड्ड' को विन्दु के साथ 'कुंड' के रूप में लिखने के कारण यह भ्रम सम्भव हुआ लगता है। जैसा कहा जा चुका है, विन्दु से अनुस्वार के अतिरिक्त व्यञ्जन-द्वित्व लिखने की एक व्यापक प्रथा रही है। इस 'कुड्ड' का प्रयोग परवर्ती हिन्दी साहित्य में 'कोड' के रूप में प्रायः मिलता है—'पदमावत' में ही कम से कम सात स्थलों पर यह शब्द आया है, यथाः—

कीन्हेसि सुख औ कोड अनंदू। पद्मावत ३'६
रहस कोड सों आवहिं जाहीं। वही ३२'६
कतहूँ नाच कोड भलि होई। वही ३६'४
रहस कोड सों रैनि बिहानी। वही ५२'१

(१८)

लइ ढुक्कउ कोसिल्लि हिमंतु तुसार भरु ॥१८६॥

इस चरण में आए हुए 'कोसिल्लि' का रूपान्तर संस्कृत टीकाओं में 'कुशलेन' किया गया है। डॉ० द्विवेदी ने 'देशी नाममाला' के आधार पर इसका अर्थ 'प्राभृतम्'=भेंट, उपहार किया है (प्रस्ता० ४५), और वही हिन्दी टीका में भी ग्रहण हुआ है। किन्तु 'देशी नाम-माला' में आया हुआ शब्द 'कोसल्लिय' है (२'१२), जो 'कौशलिक' से बना है (पा० स० म०)। मेरे विचार से यहाँ पर पाठ 'कासिल्ल' ∠कासिक=खाँसी रोग [लाने] वाला (पा० स० म०) होना चाहिए, जो बी० प्रति में 'कासिल्लि' के रूप में मिलता भी है। 'ले ढुक्कउ' की ध्वनि के साथ 'उपहार' की कल्पना यों भी मेल नहीं खाती है।

(१९)

मत्तमुक्क संठविउ विवह गंधक्करिसु ॥१९५॥

इस चरण में आए हुए 'विवह' का अर्थ समस्त टीकाओं में 'विविध' का किया गया है, किन्तु 'विविध' का प्राकृत रूप 'विविह' है, 'विवह' नहीं (पा० स० म०) और रचना में अन्यत्र भी 'विविह' ही इस अर्थ में आया है :—

पिक्खिवि विविह उज्जाणु भुवणु तहि वीसरइ ॥५४॥
ठविय विविह विलवंतिय अह तह हार लय ॥१३५॥
णव कुसुम पत्त हुय विविह वेसि ॥२०१॥

अतः पाठ कदाचित् 'विविह' ही होना चाहिए, जो इकार की मात्रा छूटने की भूल से 'विवह' हो गया है।

(२०)

ऊपर उद्धृत चरण में आए हुए 'गंधक्करिसु' का रूपान्तर संस्कृत टीकाओं में 'गन्धोत्कर्ष' किया गया है। किन्तु 'गंधोत्कर्ष' के लिए पाठ 'गंध + उक्करिस'- 'गंधुक्करिस' होना चाहिए। डॉ० द्विवेदी का सुझाव है कि पाठ 'गंधक्करस' होना चाहिए, जिसका अर्थ होगा 'गंधों से सुगंधित किए हुए रस' (प्रस्ता० ४६)। हिन्दी टीका में भी यही पाठ और अर्थ ग्रहण किए गए है। किन्तु 'गंधक्करस' पाठ कवि का अभिप्रेत नहीं लगता है, क्योंकि 'गंधक का रस' जैसा भी कुछ अर्थ इससे बनता हुआ लगता है, जो भाव के चमत्कार को नष्ट कर देता है। 'गंधोत्कर्ष' उस सुगंधित रस को कहते हैं जो उत्कर्ष अर्थात् भपके की प्रक्रिया से खींच कर निकाला जाता है, जिस प्रकार गुलाब जल या केवड़ा जल, और वही यहाँ पर अभिप्रेत लगता है। 'गंधुक्करिस का 'गंधक्करिस' बन जाना सुगम ही है और 'धु' के उकार की मात्रा के छूट जाने से हुआ लगता है।

( )

कुंद चउत्थि वरच्छणि पीणुन्नयथणिय।

णिय सत्थरि पलुटंति केवि सीमंतिणिय ॥१६५॥

उद्धृत प्रथम चरण में आए हुए 'वरच्छणि' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'वरोत्सवे' किया गया है। किन्तु 'उत्सव' से प्राकृत 'उच्छअ' या 'उच्छव' होता है (पा० स० म०)। मेरी समझ में शब्द 'वरच्छिणि'='सुन्दर आँखों वाली' था और भूल से 'च्छि' की इकार की मात्रा के छूट जाने से 'वरिच्छिणि' का 'वरच्छणि' हो गया। बी० प्रति में पाठ 'वरित्थिणि' है; वह कदाचित् 'च्छ' को 'त्थ' पढ़ लेने के कारण हुआ है, जो मध्य युग की लिखावट में प्रायः एकसे होते थे। डॉ० द्विवेदी ने संस्कृत टीकाओं का अर्थ स्वीकार करने में कठिनाई का अनुभव कर 'बरत्थिणि' ∠वरार्थिनी पाठ का सुझाव दिया है (प्रस्ता० ४६), और हिन्दी टीका में यही पाठ और अर्थ ग्रहण किए गए हैं। किन्तु कुन्द- चतुर्थी (माघ शु० ४) का व्रत पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं, वर की कामना करने वाली नहीं। इसलिए 'वरत्थिणि' पाठ को स्वीकार करने में कठिनाई प्रतीत होती है।

(२२)

णिय वल्लह कर केलि जंति सिज्जासणिहि ॥१६६॥

इस चरण में आए हुए 'करकेलि' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'केल्यर्थं' और हिन्दी टीका में 'केलि करने' किया गया है। किन्तु इस अर्थ के लिए पाठ 'केलि करि' अथवा 'करि केलि' होगा : करि ∠कृते। 'करि' के 'रि' की मात्रा के छूट जाने से 'कर' हो गया है। 'कर' अथवा 'करि' का यह प्रयोग अपभ्रंश के इतिहास में बहुत परवर्ती अवश्य प्रतीत होता है।

(२३)

मरु सियलु वाइ मंहि सीयलंतु।
णहु जणए सीउ णं खिवइ तंतु ॥२१०॥

समस्त टीकाओं में द्वितीय चरण में आए हुए 'तंतु' का अर्थ 'तप्त' किया गया है। किन्तु 'तप्त' का प्राकृत रूप 'तत्त' है (पा० स० म०) जो रचना में भी अन्यत्र आया है :—

विट्ठी काम तत्ति ण दीयइ॥ १८२ ॥

'तत्त' का 'तंतु' बिन्दु के अनुस्वार के अतिरिक्त व्यञ्जन- द्वित्व के लिखने के लिये प्रयुक्त होने के कारण हुआ लगता है। किन्तु इस पाठ को मान लेने पर उद्धृत चरणों का तुक अवश्य अच्छा नहीं बैठता है।

जिन शब्दों के पाठ--संशोधन के सुझाव ऊपर दिए गए हैं, उनकी विकृतियों का कारण-मूलक विश्लेषण करने पर स्थिति कुछ इस प्रकार की ठहरती है।

(१) द्विधा प्रयोग जनितभ्रम :—वर्णों के ऊपर बिन्दु का प्रयोग एक तो अनुस्वार की ध्वनि सूचित करने के लिए किया जाता था और दूसरे बाद में आए हुए वर्ण के द्वित्व—सूचन के लिए। इस भ्रामक लेखन-प्रथा के कारण निम्नलिखित भूलें हुई ज्ञात होती हैं :—

छंद २४	:	लक्क	∠ लंक
२७	:	पंखुडिय	∠ पक्खुडिय
२८	:	संझसिय	∠ सज्झसिय
१५८	:	रंत	∠ रत्त
१७५	:	कुंडवाल	∠ कुड्डवाल
२१०	:	तंतु	∠ तत्तु

इसी प्रकार उ पहिले एक सूक्ष्म अन्तर के साथ किन्तु बाद में बिना किसी अन्तर के भी उ तथा ओ दोनों ध्वनियों के लिए प्रयुक्त होने लगा था, जिसके कारण निम्नलिखित भूल हुई ज्ञात होती है :—

छंद ७२ : ओसहे ∠ उसहे

(२) आकृति-साम्य जनित भ्रम :—निम्नलिखित भूलें वर्णों की किंचित् समानता के कारण हुई लगती हैं :—

छंद १ : अज्ज ∠ अज्झ
३ : उव्विन्नं ∠ उव्विल्लं

(३) अनवधानता जनित मात्रा-लोप :—निम्नलिखित भूलें पढ़ने या लिखने में अनवधानता के कारण हुई मात्रा-त्रुटियों की ज्ञात होती है :—

छंद २४ : णिहइ ∠ णिहाइ
४४ : दय ∠ दिय
४५ : चल्ल ∠ चल्लि
१५७ : कहव ∠ कहवि
१६५ : विवह ∠ विविह
१६५ : गंधक्करिसु ∠ गंधुक्करिसु
१६५ : वरच्छणि ∠ वरच्छिणि
१६६ : कर ∠ करि

इसी प्रकार द्वित्य-सूचक विन्दु या वर्ण के छूटने से निम्नलिखित भूल हुई ज्ञात होती है :—

छंद १६ : मणुजणम्मि ∠ मणु ंजणम्मि।मणुज्जणम्मि

(४) अनवधानता जनित मात्रा-व्यत्यय :—अनवधानता से एक वर्ण के साथ लगने वाली मात्रा के दूसरे वर्ण के साथ लग जाने से निम्नलिखित भूल हुई ज्ञात होती है :—

छंद ११५ : विसुंठलयं ∠ विसंठुलयं

(५) स्मृति-भ्रम जनित मात्रा-विपर्यय :—स्मृति-भ्रम से एक मात्रा के स्थान पर दूसरी मात्रा को लिख उठने के कारण हुई निम्नलिखित भूलें ज्ञात होती है :—

छंद १०० : पडिल्लो ∠ पडिल्ली
१२३ : झुरंतिहि ∠ झरंतिहि
१४४ : फरिसउ ∠ फरुसउ
१८६ : कोसिल्लि ∠ कासिल्लि

अर्थ-संशोधन के सुझाव

(१)

माणुस्स दिव्व विज्जाहरेहिं णह मग्गि सूर ससि बिंबे।
आएहिं जो णमिज्जइ तं णयरे णमह कत्तारं ॥२॥

इस छन्द के दूसरे चरण के 'णयरे' शब्द की व्याख्या संस्कृत टीकाओं में' 'नागरिका' और हिन्दी टीका में 'नागर जनो' करके की गई है। किन्तु 'नागरिक' का प्राकृत रूप 'णायरिय' होता है (पा० स० म०)। यदि व्याख्या 'नागर' करके की जाए, तो उसका भी प्राकृत रूप 'णायर' होता है (पा० स० म०), जो 'संदेश रासक' में भी आया है :—

णायर जण संपुन्नु हरिस ससिहर वयणि। ४२.२

मेरी समझ में 'णयरे' संभवतः 'णय रे' है : णयं ∠नत = जिसको नमस्कार किया गया हो वह (पा० स० म०) और यह कर्त्तार के विशेषण के रूप में आया है; 'रे' केवल पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त संबोधन का पद है।

(२)

पच्चाएसि पहूओ पुव्व पसिद्धो य मिच्छदेसो त्थि।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीर सेणस्स ॥३॥

प्रथम चरण में आए हुए 'पच्चाएसि' की व्याख्या संस्कृत टीकाओं में 'प्रतीच्यां' करके की गई है। डॉ० भायाणी ने ग्रंथ के शब्द-कोष में इसे 'प्रत्यग् देश' से निष्पन्न किया है। मेरी समझ में 'पच्चाएस' ∠पश्चात् + देश है। 'पच्चा' और 'पच्छा' दोनों 'पश्चात्' के प्राकृत रूप हैं (पा० स० म०) और दोनों का अर्थ 'पश्चिम दिशा' है। इसी प्रकार 'एस' और 'देस' दोनों 'देश' के प्राकृत रूप हैं (पा० स० म०)। इसलिए 'पच्चाएसि' का अर्थ होगा 'पश्चिम दिशा के देश में'। डॉ० द्विवेदी

ने कहा है कि शब्द को नियमानुसार होना चाहिए था 'पच्छाएस', किन्तु कवि को एक अन्य अर्थ भी अभिप्रेत था, जिसके कारण उसने 'पच्छाएसि' को 'पच्चाएसि' करने की स्वतंत्रता बरती है (प्रस्ता० ४)। किन्तु ऊपर बताया जा चुका है कि 'पच्चा' का प्रयोग प्राकृत में 'पश्चात्' के लिए होता रहा है ; कवि ने इसके-प्रयोग में अतः कोई स्वतंत्रता बरती है, यह कदाचित् नहीं कहा जा सकता है।

(३)

ऊपर उद्धृत छन्द ३ के दूसरे चरण का अर्थ संस्कृत टीकाओं में किया गया है : तत्रविषये आरद्दो देशीत्वात् तन्तुवायो मीरसेनाख्यः संभूतः—उत्पन्नः। डॉ० द्विवेदी ने इस अर्थ पर ठीक ही आपत्ति की है कि 'मीर सेणस्स' षष्ठ्यन्त पद है, उसकी व्याख्या 'मीर सेनाख्य;' प्रथमान्त पद के रूप में नहीं होनी चाहिए (प्रस्ता० ३)। इसलिए डॉ० द्विवेदी ने 'आरद्द मीरसेणस्स' की संगति 'मीरसेन का आरद्ध' (मीर-सेन के गृहागत) अर्थ करके लगाई है। किन्तु मेरी समझ में चरण का सीधा अर्थ होगा : उस विषय (प्रदेश) में आरद्द हुआ जो मीरसेन का (पुत्र) था। परवर्ती छन्द में अद्दहमाण ने जो 'तह तणओ' कहा है, उसमें 'तह' ∠ तस्य से उसका आशय 'आरद्दस्य' से है। 'आरद्द' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में जो 'देशीत्वात् तन्तुवाय:' किया गया है, वह निराधार लगता है। आगे कवि ने अपने को 'कोलिय' कहा है (छन्द १६); कदाचित् इसी के सहारे 'आरद्द' के इस अर्थ की कल्पना इन टीकाओं में कर ली गई है।

(४)

तंतीवायं णिसुयं जइ किरि करपल्लवेहि अइ महुरं।
ता मद्दल करडि रवं मा सुम्मउ राम रमणेसु ॥१०॥

द्वितीय चरण के 'राम रमणेसु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'स्त्री क्रीडासु' और हिन्दी टीका में 'साधारण स्त्रियों के क्रीड़ा-विनोद में' किया गया है। किन्तु यहाँ पर अभिप्रेत अर्थ है 'स्त्रियों के गान—वाद्य में'। इसलिए मेरा अनुमान है कि मूलतः शब्द 'रामा रवण' रहा होगा जो धीरे-धीरे लोक में 'राम-रमण' बन गया। इसमें 'रवण∠रमण=गान-वाद्य है। अवधी की एक लोकोक्ति में भी यह शब्द आता है:—

कहाँ राम रमौवल औ कहाँ कुकुर-काट।

अवधी क्षेत्र में सालार मसऊद ग़ाज़ी के उपासक जो 'रवन्ना' या 'रबन्ना' बजवाते हैं, उसमें भी 'रवण' अपने पूर्ववर्ती रूप में सुरक्षित है।

(५)

जइ सरवरंमि विमले सूरे उइयंमि विअसिआ णलिणी।
ता किं वाडि विलग्गा मा विअसउ तुंबिणी कहवि ॥३४॥

संस्कृत टीकाओं में 'वाड' की व्याख्या 'वृत्ति' करके की गई है, जिसे डॉ० द्विवेदी ने ठीक ही कहा है 'वृति' होना चाहिए (प्रस्ता० ६)। किन्तु 'वाड' ∠वाट (पा० स० म०) है और 'वाट' 'वट से बना हुआ माना गया है (मोनियर विलियम्स); इसी 'वाट' से 'वाटक' [7हि० वाड़ा] और 'वाटि' [7हि० बाड़ी] भी बने माने गए हैं (मोनियर विलियम्स)।

(६)

ऊपर के छन्द के द्वितीय चरण में आए हुए 'कहवि' का अर्थ समस्त टीकाकारों ने छोड़ दिया है। यह है : कहवि ∠कहंपि∠कथम् + अपि = किसी प्रकार (पा० स० म०)।

(७)

लोयण जुयं च णज्जइ रविंद दल दीहरं च राइल्लं।
पिंडीर कुसुम पुंजं तरुणि कवोला कलिज्जंति ॥३४॥

द्वितीय चरण में आए हुए 'कलिज्जंति' का अर्थ टिप्पणककार ने 'जिग्यत:' किया है, जिसके स्थान पर रचना के विद्वान् संपादक मुनि जिनविजय जी ने 'जयत:' का सुझाव दिया है; अवचूरिकाकार ने इसका अर्थ 'दृश्येते' किया है; हिन्दी टीका में '—की भाँति सुन्दर है' अर्थ किया गया है। किन्तु ये समस्त अर्थ अनुमान से किए गए लगते है। शब्द 'कलय्' से व्युत्पन्न है, जिसका एक अर्थ 'जानना' होता है (पा० स० म० तथा मोनियर विलियम्स)। अतः 'कलिज्जंति' का अर्थ होगा 'जान पड़ते हैं'। रचना में अन्यत्र भी यह शब्द ठीक इसी प्रकार और इसी अर्थ में आया है :—

धवर कपोल कलिज्जहि दाडिम कुसुम दल ॥५१॥

(८)

णयर णामु सामोरु सरोरह दल नयणि ॥४२॥

'सामोर' को संस्कृत टीकाकारों ने मुल्तान नगर बताया है। किन्तु मुल्तान के इतिहास में उसका प्राचीन नाम अन्य मिलता है, यह नाम नहीं मिलता है (दे० इम्पीरियल गजेटियर ऑव् इंडिया में 'मुल्तान')। स्पष्ट ही यह 'साम्बपुर' है, जैसा अन्य विद्वानों ने भी माना है। किन्तु यह साम्बपुर देश के मानचित्र में कहाँ है, यह नहीं ज्ञात होता है। मोनियर विलियम्स ने 'साम्ब', 'साम्बपुर' और 'साम्बपुरी' नाम देते हुए अपने कोश में लिखा है, साम्ब कृष्ण और जाम्बुवती के पुत्र थे, जिन्हें कहा गया है नारद ने सूर्योपासना और व्यास ने मगों के धार्मिक कृत्यों की दीक्षा दी थी; कहा जाता है कि चंद्रभागा के तट पर साम्ब ने एक नगर की स्थापना की थी, जिसका नाम साम्बपुर या साम्बपुरी हुआ। चन्द्रभागा और चेनाब एक ही हैं। मुल्तान भी चेनाब पर स्थित है और वह भी किसी समय एक प्रसिद्ध आदित्य-तीर्थ था। किन्तु इतने साम्य के होते हुए भी यह असम्भव नहीं है कि साम्बपुर चन्द्रभागा पर ही स्थित अन्य एक स्थान रहा हो। 'मूलस्थान' रचना में बाद में, सम्भवतः एक भिन्न नगर के रूप में, आता है :—

तवण तित्थु चाउदिसि मियच्छि वखाणियइ।
मूलत्थाणु सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ ॥६५॥

(९)

ऊपर उद्धृत छंद का ही दूसरा चरण है :—

णायर जणसंपुन्नु हरिस ससिहर वयणि ॥४२॥

टीकाकारों ने इसके 'हरिस' का अर्थ नहीं किया है। यह 'हरिस'∠हृष्=हर्ष करना, प्रसन्न होना है। इसका कर्त्ता 'ससिहर वयणि'=चन्द्रवदनी स्त्रियाँ हैं।

(१०)

विविह विअक्खण सत्थिहि जइ पवसिइ णिरु।
सुम्मइ छंदु मणोहरु पायउ महुरयरु ॥४३॥

प्रथम चरण के 'णिरु' का अर्थ संस्कृत टीकाकारों ने नहीं किया है। हिन्दी टीका में 'नरु' पाठ है जो 'विअक्खण' का विशेष्य मान लिया गया है, किन्तु विशेषण और विशेष्य परस्पर इतनी दूरी पर नहीं रक्खे जाते हैं। 'णिरु' अव्यय है, जिसका अर्थ है 'निश्चित' (पा० स० म०)। अन्वय में यह द्वितीय चरण के साथ जायेगा।

(११)

अवर कहव णिवडब्भर घण तुंगत्थणिहिं।
भरिण मज्झु णहु तुट्टइ ता विंभिउ मणिहिं ॥४७॥

प्रथम चरण में आए हुए 'णिवडब्भर' की व्याख्या टिप्पणककार ने 'निविडोत्तर' और अवचूरिकाकार ने 'निविडोद्धुर' करके की है। डॉ० द्विवेदी के अनुसार यह परिवर्ती हिन्दी के निपट + उब्भर के संयुक्त शब्द का पूर्वरूप जान पड़ता है (प्रस्ता०)। किन्तु चरण में इस शब्द के बाद ही 'घन तुंग' शब्द आते हैं, जिससे 'निपट + उब्भर' पाठ सम्भव नहीं लगता है। इसलिए मेरी समझ में यह 'णिवड + भर = निविड और भारी के अर्थ में आया है और 'स्तन' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

(१२)

तह मह अच्छइ णाहु विरह उल्हावयरु।
अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्दुडयरु ॥६७॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'उल्हावयरु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'स्फेटक' है और हिन्दी टीका में 'विध्मापक' से व्युत्पन्न कर 'धौंक कर आग को प्रज्वलित करने वाला' किया गया है। किन्तु 'उल्हव' है∠विध्मापय् = आग को बुझाना (पा० स० म०)। इसलिए संस्कृत टीकाओं में भावार्थ तो आ गया है, शब्दार्थ नहीं आया है। हिन्दी टीका में शब्द को व्युत्पन्न ठीक किया गया है किन्तु अर्थ देने में भूल हुई है। 'उल्हव' का प्रयोग 'आग बुझाना' के ही अर्थ में रचना में अन्यत्र भी हुआ है :—

उल्हवइ ण केण विरहज्झल ॥१३७॥
पुणवि पिएण व उल्हवइ पिय विरहग्गि निभंति ॥१३८॥
उल्हवियं गिम्ह हवी धारा निवहेण पाउसे पत्ते ॥१४६॥

(१३)

ल्हसिउ अंसु उद्धसिउ अंगु विलुलिय अलय।
हुय उब्बिंबिर वयण खलिय विवरीय गय ॥८७॥

'ल्हसिउ' की व्याख्या, जो उद्धृत प्रथम चरण में आता है, टिप्पणक में 'गतम्' अवचूरिका में 'क्षसितम्' और हिंदी टीका में 'ह्रास हो गया है जिसका' द्वारा की गई है। किन्तु 'ल्हस'< स्रंस् = खिसकना, सरकना, गिर पड़ना है (पा० स० म०)। 'अंसु' का अर्थ समस्त टीकाओं में 'तेज' किया गया है, किन्तु अंसु∠अंस = कंधा है। अतः 'उल्हसिउ अंसु' = स्रस्तांस है और 'स्रस्तांस' = झुके हुए कंधे (मोनियर विलियम्स)।

(१४

ऊपर उद्धृत प्रथम चरण के 'उद्धसिउ' को संस्कृत टीकाकारों ने 'उद्घषित' बताया है और हिन्दी टीका में उसका 'धँसा हुआ' अर्थ किया गया है। 'उद्वषित' संस्कृत का शब्द नहीं है, वह 'उद्धसिउ' से बना लिया गया लगता है, क्योंकि 'धँसना' के लिए 'धस्' क्रिया का प्रयोग संस्कृत और प्राकृत दोनों में होता है। 'उद्धसिउ' है ∠उद्ध्वस्त और हिन्दी रचनाओं में भी यह शब्द इसी अर्थ में आया है :—

उर ही हार हरावलि टूटी। उधसी माँगि बेनि गै छूटी॥
मंझन : मधुमालती, (छंद १३६)॥

(१५)

ऊपर उद्धृत द्वितीय चरण के 'उब्बिंबिर' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'फिक्क' तथा हिन्दी टीका में 'फीका' किया गया है। 'उब्बिंबिर' को देशज कह कर इसका अर्थ 'खिन्न' या 'उद्विग्न' बताया गया है। (पा० स० म०)। मेरी समझ में 'उब्बिंब' और 'उब्बिंबिर' सम्भवतः 'उद्विग्न' से व्युत्पन्न हैं। अतः 'फिक्क' और 'फीका' अर्थ कदाचित् अनुमान मात्र से किए गए हैं।

(१६)

पाइय पिय वडवानलहु विरहग्गिह उप्पत्ति।
जं सित्तउ थोरंसयहि जलइ पडिल्ली झत्ति ॥८८॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'पाइय' का कोई अर्थ संस्कृत टीकाओं में नहीं किया गया है। डॉ० भायाणी ने ग्रंथ के शब्द कोष में इसे∠पादिक=पदचारिन् से व्युत्पन्न बताया है, जो कि प्रसंग में जमता नहीं है। किन्तु यह∠प्राकृत है और 'प्रकृति से उत्पन्न' के अर्थ में 'वडवानल' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ लगता है। प्रथम चरण का आशय यह है कि विरहानल प्राकृत वडवानल से उत्पन्न है, उस पर इसी-लिए मनुष्य की कोई युक्ति काम नहीं करती है।

(१७)

ऊपर उद्धृत छंद के द्वितीय चरण में आए हुए 'पडिल्ली' शब्द का अर्थ समस्त टीकाओं में 'अधिक' किया गया है, और टिप्पणक और अवचूरिका में इसे देशी शब्द बताया गया है, किन्तु यह∠'पडिअलि'=त्वरित, वेगयुक्त है (पा० स० म०), जो सम्भवतः 'प्रति त्वरिन्' से व्युत्पन्न है। रचना में यह शब्द अन्यत्र भी है, किन्तु टीकाकारों ने प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न अर्थ किए हैं :—

हियउ तह पहिल्लो बोलियंतो विरत्तो ॥१००॥
विरह हुयासि झलक्किउ त पडिलिउ झडइ ॥१०६॥
गय जल रिल्लि पडिल्लिव तित्थिहिं ॥१६२॥

(१८)

ते पावहि सुविणंतरि धन्नउ पियतणु फरसु।
आलिंगणु अवलोयणु चुम्बणु चवणु सुरय रसु ॥६३॥

उद्धृत द्वितीय चरण में आए हुए 'चवणु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'दशन खंडन' किया गया है। हिन्दी टीका में 'चवणु' को मूल पाठ में नहीं स्वीकार किया गया है। 'चव' का अर्थ 'बोलना' होता है (पा० स० म०)। इसलिए मेरी समझ में 'चवणु' का अर्थ 'वार्तालाप' होना चाहिए। 'दशन खंडन' अर्थ अनुमान से लगाया हुआ लगता है।

(१९)

तसु सुयण निवेसिय भाइणपेसिय मोहवसण बोलंत खणे।
मत साइय वक्खक हरि गउ तक्खणु जाउ सरणि कसु पहिय भणे ॥६५॥

संस्कृत टीकाकारों ने उद्धृत प्रथम चरण के 'सुयण' का अर्थ 'हृदये' किया है; डॉ० द्विवेदी अर्थ 'सुअयण' ∠सुतनु=सुन्दर शरीर करते हैं (प्रस्ता० ३०)। डॉ० भायाणी ग्रंथ के शब्दकोष में इसे 'स्वप्न' से व्युत्पन्न करते हैं। 'सुइण' 'स्वप्न' से व्युत्पन्न है (पा० स० म०), और 'इ' का 'य' प्रायः हो जाता है, इसलिए 'सुयण' ∠सुइण∠स्वप्न सर्वथा सम्भव है। प्रसंग भी स्वप्न-दर्शन का है (छंद ६४), इसलिए 'स्वप्न' अर्थ अधिक सम्भव प्रतीत होता है।

(२०)

जं पिय आसासंगिहि अंगिहि पलु चडइ।
विरह हुयासि झलक्किकउ तं पडिलिउ झडइ ॥१०६॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'पडिलिउ' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'द्विगुण' और हिन्दी टीका में 'शीघ्र' किया गया है। इसका अर्थ, जैसा ऊपर छंद ८३ की 'पडिल्ली' के सम्बन्ध में बताया जा चुका है, 'त्वरित', अथवा 'वेगयुक्त' है और यह संभवतः 'प्रतित्वरिन्' से व्युत्पन्न है।

(२१)

हिउय पउक्कु पडिउ दीवंतरि।
णाइ पतंगु पडिउ दीवंतरि ॥१११॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'पउक्कु' का अर्थ संस्कृत टीकाकारों ने छोड़ दिया है। डॉ० भायाणी ग्रंथ के शब्दकोष में शब्द को 'प्रयुक्त' से व्युत्पन्न करते हैं, किन्तु प्रयुक्त7पमुक्क होता है। जो 'संदेश रासक' में भी आया है :—

कद्दम भारु पमुक्किकउ सलिलिहिं

डॉ० द्विवेदी इस पाठ के स्थान पर सी० प्रति में आए हुए 'पडिक्कु' को स्वीकार करने का सुझाव देते है (प्रस्ता० ३४) और 'पडिक्कुं' का अर्थ 'फड़क कर' करते हैं। वास्तव में 'पउक्क' ∠प्रयुक्त है और इसी प्रकार रचना में अन्यत्र भी आता है :—

कारुन्न पउक्कउ तह कुणइ ॥२१७॥

(२२)

गयउ दिवसु थिउ सेसु पहिय गमु मिल्हियइ ।
णिसि अत्थमु बोलेवि दिवसि पुणु चल्लिवइ ॥१८३॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'अत्थमु बोलेवि' अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'निशा अथवा निश्यस्तमनं निर्गमयित्वा' और हिन्दी टीका में 'रात्रि बिताकार' किया गया है। किन्तु 'बोल' या' वोल' ∠व्यति + क्रम् = उल्लंघन करना है (पा० स० म०), और इस अर्थ में रचना में अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है:—

सुरहि गंधु रमणीउ सरउ इम वोलियउ ॥१८४॥
सिसिर फग्गु वुल्लीणु कहव रोवंतियइ ॥२०४॥

(२३)

तसु अणुअंचि पलुट्टि विरह हवि तविय तणु ।
वलिविपत्त णिय भुयणि विसंठुल विहल मणु ॥१३०॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'विहलमणु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'विह्लंवल मनसा' और हिन्दी टीका में 'विह्वल मना' किया गया है। विह्लंवल' ∠विह्-वलाङ्ग (पा० स० म०) शब्द 'मनसा' के साथ सम्भव नहीं है, और 'विसंठुल ∠विसंस्थूल = विह्वल इस शब्द के ठीक पहले आ चुका है, इसलिए 'विह्वलमना' अर्थ भी सम्भव नहीं लगता है। 'विहल' ∠विफल = निष्फल है (पा० स० म०)।

(२४)

अइउन्हउ वोमयलि पहंजणु जं वहइ ।
तं झंखरु विरहिणिहि अंगु फरिसिउ दहइ ॥१३२॥

उद्धृत द्वितीय चरण में आए हुए 'झंखरु' को 'डंडुयालकनामा पवन' कहा गया है, और हिन्दी टीका में इसे पवन का एक प्रकार मान कर ज्यों का त्यों रख दिया गया है। किन्तु वह 'झंखड' है और रचना में भी आया हुआ है :—

उट्टिउ झंखडु गयणि खर फरसु पवणिहय ॥ १९२ ॥

झंखर [दे०] = शुष्क तरु है (पा० स० म०) और 'झंखाड़' के रूप में

हिन्दी में भी मिलता है। यह 'विरहिणिहि अंग' का उपमान है, जिसे कर्त्ता के रूप में पूर्ववर्ती चरण में आया हुआ 'पहंजण' दग्ध करता है।

(२५)

हरियंदणु सिसिरत्थु उवरि जं लेवियउ।
तं सिहणह परितवइ अहिउ अतिसेवियउ ॥१३५॥

उद्धृत प्रथम चरण में आए हुए 'उवरि' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'उरसि' दिया हुआ है, और हिन्दी टीका में उसे छोड़ दिया गया है। 'उवर' ∠उदर (पा० स० म०) है, जैसा डॉ० भायाणी ग्रंथ के शब्दकोष में कहते हैं।

(२६)

इम तवियउ बहु गिंभु कहवि मइ वोलियउ।
पहिय पत्तु पुण पाउसु धिट्ठु ण पत्तु पिउ ॥ १३९ ॥

उद्धृत प्रथम चरण में आए हुए 'वोलियउ' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'निर्गमितः' और हिन्दी टीका में 'बिताया' किया गया है। वोल ∠व्यति + क्रम् = उल्लंघन करना है, और रचना में अन्यत्र भी इसी अर्थ में आया है, जैसा ऊपर छंद ११२ के 'वोलेवि' के प्रसंग में बताया जा चुका है।

(२७)

पउदंडउ पेसिज्जइ झाल झलकतियइ।
भय भेसिय अइराबइ गयणि खिवंतियइ ॥१४०॥

उद्धृत दूसरे चरण में आए हुए 'खिवंतियइ' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'द्योतनया' और हिन्दी टीका में 'चमकने से' किया गया है। किन्तु खिव ∠क्षिप = फेंकना, डालना है (पा० स० म०)। दूसरे चरण का अर्थ होगा : भयानक वेष वाली विद्युत् गगन में फेंक-फेंक उठती है। इसी अर्थ में यह शब्द रचना में अनेक स्थानों पर आया है :—

खिवइ हारु खारुब्भवु कुसुम सरच्छयहि ॥१३७॥
पइ पइ पेसइ करलउ गयणि खिवंतयह ॥१४१॥

णहु जणइ सीउ णं खिवइ तंतु ॥२१०॥
अच्च हियं मह हियए कंरम्प्यो खिवइ सरजालं ॥२२१॥

(२८)

पय हत्थिण किय पहिय पवहंतयह ।
पइ पइ पेसइ करलउ गयणि खिवंतयह ॥१४१॥

उद्धृत द्वितीय चरण में आए हुए 'खिवंतयह' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में नहीं किया गया है, और हिन्दी टीका में 'जलाती हुई' किया गया है। किन्तु खिव ∠क्षिप्=फेंकना, डालना है, जैसा ऊपर बताया जा चुका है।

(२९)

हुइ तारायणु अलखु वियंभिउ तम पसरु ॥१४३॥

उद्धृत चरण के 'वियंभिउ' का अर्थ समस्त टीकाओं में छोड़ दिया गया है। जैसा ग्रंथ के शब्दकोष में डॉ भायाणी कहते हैं, वियंभिउ ∠विजृम्भित=उत्पन्न है, और इसी अर्थ में रचना में यह अन्यत्र भी आया है :—

जइ णिच्च मणंमि वियंभिययं मयणं ॥१४५॥

(३०)

मच्छर भय संचडिउ रन्नि गोयंगणिहि ।
मणहर रमिमइ नाहु रंगि गोयंगणिहि ॥१४६॥

उद्धृत प्रथम चरण का अर्थ संस्कृत टीकाओं में किया गया है : मच्छर भयाद् गवाँ व्रजैःस्थले आरूढम् । हिन्दी टीका में अर्थ किया गया है : मच्छरों के भय से गौओं का समूह रन्न (ऊँचा स्थल) पर चढ़ गया है। किन्तु 'रन्न' ∠रण्य=जंगल, अटवी है (पा० स० म०) और हिन्दी के लोक-साहित्य में 'रन-बन' के रूप में प्रायः आता है। 'गोयंगण' का 'गोगण' अर्थ भी सम्भव नहीं है, वह ∠गोपाङ्गना है। मच्छरों के डर से गायें ऊँचे स्थलों पर नहीं चढ़ जाती हैं, वे वर्षा में गोशालाओं में ही प्रायः रहती हैं। मेरी समझ में 'मच्छर भय' ∠मत्सर + भग = मद और ऐश्वर्य है

और 'गोयंगण' ∠गोपाङ्गना=इन्द्र वधू है। प्रथम चरण का इस प्रकार अर्थ होगा; अरण्य में इन्द्रवधूटियों को मद और ऐश्वर्य चढ़ रहा है। बर्षा में इन्द्र वधूटियों का वैभव दर्शनीय होता ही है।

(३१)

जउ णहु णिग्गउ जीउ पीववर्बाथिहि जडिउ।
हियउ न किण किरि फुट्टउजं वज्जिहि घडिउ ॥१५४॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'किरि' का का अर्थ समस्त टीकाओं में छोड़ दिया गया है। यह 'किरि'<किर <किल=निश्चय ही है (पा० स० म०) और इसी प्रकार रचना में अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है :—

तंतीवायं णिसुयं जइ किरि कर पल्लवेहि अइ महुरं ॥१०॥
पसिय ण सिज्झइ किरि बलु मह कंदप्पसउ ॥६६॥

(३२)

जं हय हीय गिंभि णव सरयह।
तं पुण सोह चड़ी णव सरयह ॥१६१॥

उद्धृत प्रथम चरण में 'हय' का अर्थ समस्त टीकाओं में छोड़ दिया गया है। 'हय' <हत है (पा० स० म०) और 'हउ' रूप में रचना में अन्यत्र भी आया है :—

तुट्टी देह ण हउ हियउ तुअ संमाणिन पिक्खि ॥७८॥

(३३)

उच्छलि भुवण भरिय सयवत्तिहिं।
गय जल रिल्लि पडिल्लिय तिरिथहिं ॥१६२॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'पडिल्लिय' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'पतितः' और हिंदी टीका में 'वेग से' किया गया है। जैसा ऊपर छंद ८६ में आए हुए

'पडिल्ली' शब्द के संबंध में बताया जा चुका है, यह 'पडिअलि' ∠प्रतित्वरिन् = त्वरित, वेग युक्त है (पा० स० म०) और इसी प्रकार रचना में अनेक बार आया है, यद्यपि टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रसंगों में आवश्यकतानुसार इसका अर्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है।

(३४)

धूव दिंति गुरुभत्ति सइत्तिहि।
गो आसणिहि तुरंग चलत्थिहि ॥१६६॥

उद्धृत प्रथम चरण में आए हुए 'सइत्तिहि' का अर्थ समस्त टीकाओं में 'सहिता' या 'सहित्' किया गया है। किंतु 'सहित' का प्राकृत रूप 'सहिअ' है (पा० स० म०)। 'देशी नाममाला' के आधार पर बताया गया है कि 'सयत्त' = मुदित' हर्षित (पा० स० म०) है और ग्रन्थ की भूमिका में डॉ० भायाणी भी 'सयत्ति' = प्रमुदिता कहते हैं (भूमिका ६) किंतु मुझे इस शब्द के संबंध में दो संभावनाएँ और भी विचारणीय लगती हैं:—

सइत्ति ∠ स + इति = सहेतु, सकारण।

सइत्ति ∠ स + यत्त ∠ यत्न = यत्न पूर्वक।

(३५)

अंगि अंगि घणु घुसिणु विलत्तउ।
णं कंदप्पि सरिहि विसु खित्तउ ॥१७८॥

उद्धृत प्रथम चरण के 'घुसिणु' का रूपान्तर संस्कृत टीकाओं में 'घुसृण' किया गया है और हिंदी टीका में उसका अर्थ 'कपूर' किया गया है। किंतु घुसिण ∠घुसण = कुकुंम है (पा० स० म०)।

(३६)

सगुंज्जिउ कुसुम भारु सीसोवरि।
ण चंदट्ठु कसिण घण गोवरि ॥१८१॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'चंदट्ठु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'चन्द्रस्यास्थान' और हिंदी टीका में 'चन्द्रमा स्थित है' किया गया है। 'चंदट्ठु' में 'अट्ठु' प्रथमा का रूप है, क्रिया का रूप नहीं है। इसलिए हिंदी-टीका वाला अर्थ संभव नहीं लगता है। यह 'अट्ठ' अट्ठाण ∠आस्थान=सभा या सभागृह (पा० स० म०) का ही कोई परवर्ती रूप लगता है। डॉ० भायाणी ने 'चंदट्ठु' पाठ का सुझाव दिया है (भूमिका ६८)। किंतु वह असंभव लगता है।

(३७)

घण जलबाहु वहुल्ल मिल्हेविणु ।
पढिय अडिल्ल मइ वत्थु तहेविणु ॥१८१॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'तहेवि' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'तदैव' तथा तथा हिंदी टीका में 'और' किया गया है। किन्तु जैसा डॉ० भयाणी ने भी ग्रन्थ के शब्दकोष में कहा है, तहेवि∠तथैव=उसी तरह, उसी प्रकार (पा०स०म०) है।

(३८)

संसोसिउ तणु हिमिण हाम हेमह सरिसु ॥१३१॥

उद्धृत चरण के 'हाम हेमह सरिसु' का अर्थ संस्कृत टीकाओं में 'धाम्ना हेम सदृशं' और हिन्दी टीका में 'जैसे (ठंडक) को' किया गया है। धामन्= मकान प्रसंग में अपेक्षित नहीं लगता है, और घाम∠ घम्मा∠ घर्म का कोई रूप 'हाम' नहीं मिलता है। 'हाम'∠एवं=इस प्रकार है (पा० स० म०)' इसी प्रकार 'हेम' का अर्थ 'हिम' कहीं नहीं मिलता है। 'हेम' के तीन अर्थ मिलते हैं : जाड़ा, सोना और धत्तूरा (मोनियर विलियम्स तथा पा० स० म०)। इसलिए मेरी समझ में उद्धृत चरण का अर्थ होगा : इसप्रकार (मेरा) तनु हेम (धत्तूरे) के सदृश हिम से संशोषित हो गया। धत्तूरा हेमंत के तुषार-पात से सूख सा जाता है।

(३९)

हेमंति कंत विलवंतियह जइ पलुट्टि नासासिहसि ।
तं तइय मुक्ख खल पाइ मइ मुइय विज्ज कि आविहसि ॥१९१॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'तइअ' का अर्थ समस्त टीकाओं में छोड़ दिया गया है। 'तइय' ∠ तइअ ∠ तदा = उस समय है (पा० स० म०) और इस अर्थ में रचना में अन्यत्र भी आया है:—

सुहय तइय राओ उग्गिलंतो सिणेहो ॥१००॥

(४०)

उटिठउ झंखडु गयणि खर फरसु पवणिहय ।
तिणि सूडिय भंडि करि असेस तहि तरुय गय ॥१६२॥

उद्धृत द्वितीय चरण के 'सूडिय झडि करि' का अर्थ टिप्पणक में छोड़ दिया गया है, और अवचूरिका में 'सुडिताः सन्तः' किया गया है। डॉ० द्विवेदी ने 'सूड' धातु को हेमचन्द्र के आधार पर 'भंज' धातु का आदेश माना है और 'सूडिय' का अर्थ 'तोड़ा हुआ' किया है (प्रस्ता०)। किंतु मेरी समझ में सूडिय ∠ सूदित = आहत, विनष्ट, मृत की भी सम्भावना विचारणीय है।

(४१)

मत्त मुक्क संठविउ विवह गंधक्करिसु ।
पिज्जइ अद्धावट्टउ रसियहि इक्खरसु ॥१६५॥

द्वितीय चरण के 'अद्धावट्टउ' को संस्कृत टीकाओं में 'अर्धावर्त्त' और हिन्दी टीका में 'आधा पेरा हुआ' कहा गया है। 'अद्धावट्ट' ∠ अर्धावर्त = आधा औटा हुआ होता है, जिसे अवधी क्षेत्र में 'अधेवट' कहते हैं। कोई रस या क्वाथ जब औटाने या पकाने पर परिमाण में आधा रह जाता है, उसे उसका अधेवट कहते हैं। ईख का रस अधेवट करने पर गाढ़ा और इसलिए अधिक मीठा हो जाता है, और उसका कफ-कारक दोष भी नष्ट हो जाता है। इसके बाद उसमें गुलाब या केवड़ा जल जैसा कोई गंधोत्कर्ष मिलाकर पीने से वह बहुत स्वादिष्ट हो जाता है।

(४२)

सरउ गयउ अइ कट्ठि हिमंतु पवन्नियइ ॥२०४॥

उद्धृत चरण के 'पवन्नियइ' का अर्थ टिप्पणक में छोड़ दिया गया है, अवचूरिका में 'प्रपन्नः प्राप्त :' और हिन्दी टीका में 'आया' किया गया है। किन्तु 'प्रपन्न' से 'पवन्न' बनता है (पा० स० म०)। मुझे तो यह ∠ पवन्निय ∠ पवणिअ ∠ प्रवणित = सुस्थ (स्वस्थ ?) किया हुआ, तंदुरुस्त किया हुआ (पा०स ० म०) ज्ञात होता है।

'प्राकृत पैंगल' के हम्मीर-विषयक छंद

श्री चंद्रमोहन घोष द्वारा सम्पादित और बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा १६०२ में प्रकाशित 'प्राकृत-पैंगल' में हम्मीर के सम्बन्ध के आठ छंद आठ विभिन्न वृत्तों के उदाहरण के रूप में मिलते हैं। अर्थ के साथ उन्हें उक्त संस्करण के अनुसार नीचे दिया जा रहा है। सम्पादित पाठ को उद्धृत करते हुए उक्तसंस्करण से रचना की मेरे ध्यान से दो सर्वाधिक विश्वसनीय प्रतियों बी० और सी० के प्रमुख पाठांतर भी कोष्ठकों में दिए जा रहे हैं, और अर्थ देते हुए इन पाठांतरों के अर्थ भी यथास्थान कोष्ठकों में दिए जा रहे हैं।

(१) गाहिणी (मात्रा वृत्त ७१)—

मुंचहि सुन्दरि पाअं अप्पहि हसिऊण सुमुहि खग्ग में।
कप्पिअ मेच्छ सरीरं पेच्छइ वअणाइ तुमह धुअ हम्मीरो (हम्बीरो-पाठां) ॥

अर्थ—[हम्मीर ने कहा], "हे सुन्दरी, मेरे चरणों को छोड़ और हे सुमुखी, हँसकर मुझे खड्ग अर्पित कर, [जिससे] म्लेच्छ के शरीर को काट कर हम्मीर ध्रुव (निश्चय ही) तुम्हारा वदन देखे।"

(२) रोला (मात्रा वृत्त ६२)—

पअभर दरमरु धरणि तरणिरह (रअ-पाठां) धुल्लिय भंपिय।
कमठ पिट्ठ टरपरिअ मेरु मंदर सिर कंपिअ ॥
कोह (कोहे-पाठां) चलिअ हमीर (हम्बीर-पाठां) वीर गअजूह संजुत्ते।
किअउ कट्ठ (कट्ठे-पाठां) हाकंद मुच्छि मेच्छिह के पुत्ते ॥

अर्थ—[हम्मीर की सेना के] पद भार से धरणी दलितमृदित हो गई, सूर्य का रथ (रज-पाठां) धूलि से ढँप गया; कमठ की पीठ टरपरा उठी, मेरु और मंदर का

सिर काँप उठा। जब क्रोधपूर्वक वीर हम्मीर गजयूथ से संयुक्त हो कर चल पड़ा, तब म्लेच्छों के पुत्र मूर्च्छित हो कर कष्ट पूर्वक कराह उठे।

(३) छप्पउ (मात्रा-१०६)---

पिंधउ दिढ सण्णाह बाह उप्पर पक्खर दइ॥
बंधु समदि रण धसउ सामि हम्मीर (हम्बीर-पाठां) बअण लइ।

उड्डुल (उज्जल-पाठां) णहपह भमउ खग्गरिपु सीसह डारउ (झालउ-पाठां)॥
पक्खर पक्ख ठेल्लि पेल्लि पब्बअ अप्फालउ॥
हम्मीर (हम्बीर-पाठां) कज्जु जज्जलत्रणह (त्रणु-पाठां) कोहाणल मुहमह जलउ।
सुलताण सीस करबाल दइ तेज्जि केलेबर दिअ (दिव-पाठां) चलउ॥

अर्थ---[जज्जल कहता है,] "मैं अब बाँहों के ऊपर पाखर दे कर दृढ़ सन्नाह पहन रहा हूँ; अपने बंधु से मिलकर और स्वामी हम्मीर का वचन लेकर मैं रण में धँस रहा हूँ; मैं उड़ता हुआ (उज्जवल-पाठां) नभ-पथ में भ्रमण कर रहा और शत्रु के सिर पर खड्ग झाड़ रहा हूँ; पाखर से पाखर को ठेल-पेल कर मैं पर्वतों को फाड़ रहा हूँ।" जज्जल कहता है ("मैं जज्जल कहता हूँ"---पाठां), "मैं हम्मीर के कार्य के लिए क्रोधानल के मुख में जल रहा हूँ; सुल्तानके सिरपर तलवार देकर और अपना कलेवर त्याग कर मैं स्वर्गलोक को चल रहा हूँ।"

(४) कुंडलिआ (मात्रा वृत्त १४७)---

ढोल्ला मारिअ ढिल्लि महं मुच्छिअ मेच्छ सरीर।
पुर जज्जल्ला मंति (मल्ल-पाठां) बर चलिअ बीर हम्मीर (हम्बीर-पाठां)॥

चलिअ बीर हम्मीर (हम्वीर-पाठां) पाअभर मेइणि कंपइ।
दिगमग णह अंधार धूलि सूरह रह झंपिअ।
दिगमग णह अंधार आणु खुरसाणक ओल्ला।
दरमरि दमसि बिपक्ख मारुअ (मारु, मरु पाठां) ढिल्लि मह ढोल्ला।

अर्थ---जब दिल्ली में उसने ढोल पीटा, म्लेच्छों के शरीर मूर्छित हो गए, आगे-आगे श्रेष्ठ मन्त्री (मल्ल-पाठां) जज्जल को लेकर वीर हम्मीर चल पड़ा। जब हम्मीर चला [उसकी सेना के] पद-भार से मेदिनी काँप उठी, दिशाओं तथा नभ में अंधकार हो गया और धूल ने सूर्य के रथ को ढाँप लिया। दिशाओं तथा नभ में

[जिस समय] अंधकार हो रहा था, वह खुरासान का ओल (पराजित शत्रु से अधीनता की बंधक के रूप में लिए गए राजकुमारादि) ले आया, और [इस प्रकार] उसने दलमल कर और दमित कर दिल्ली में ढोल पीटा।

(५) गगणांग (मात्रावृत्त १५१) —

भजिअ मलअ चोलवइ णिवलिअ (चवलिअ-पाठां०) गंजिअ गुज्जरा।
मालव राअ मलअ गिरि लुक्किअ परिहरि कुंजरा।
खुरासाण खुहिअ रणमह मुहिअ लंघिय साअरा।
हम्मीर (हम्बीर-पाठां०) चलिअ हारव पलिअ रिउ गणह काअरा॥

अर्थ—उसने मलय को तोड़ डाला, चोलपति को निर्बल (चपल, आकुल-व्याकुल पाठां०) कर दिया और गुर्जर को नष्ट कर डाला; मालवराज अपने हाथियों को छोड़ कर मलयगिरि में जा छिपा; खुरासानपति क्षुब्ध होकर रण में मूर्छित हो गया और वह भागकर सागर लाँघ गया; हम्मीर जब चला, 'हा' रव पड़ गया और रिपुगण कातर हो उठे।

(६) लीलावती (मात्रावृत्त १९०) —

घर लग्गइ अग्गि जलइ धह धह कई दिगमग णह पह अणल भरे।
सब दीस पसरि पाइक्क लुलइ धणि(धज-पाठां०) थण हर जहणदिआव करे।
भअ (भए-पाठां०) लुक्किअ थक्किअ बइरि तरुणिजण भइरव भेरिअ सद्द पले।
महि लोटइ पिट्टइ रिउ सिर टुट्टइ जक्खण (जक्ख-पाठां०) वीर (हम्बीर-पाठां०) चले।

अर्थ—[शत्रुओं के] घरों में आग लग गई और वह धह-धह (दहदह-पाठां०) करके जलने लगी, दिग्मार्ग और नभ-पथ अनल से भर गये। पदाति सब दिशाओं में पसर गए और [शत्रुओं] स्त्रियाँ अपने भारी स्तनों तथा जघनों पर हाथ दिये हुए चंचल हो उठीं। वैरियों की स्त्रियाँ थकित होकर भय के मारे छिप गईं जब [उनके कानों में] भयानक भेरियों के शब्द पड़े। रिपुगण के सिर टूट-टूट कर पृथ्वी पर लोटने तथा उसे पीटने लगे जिस क्षण वीर हम्मीर [रणक्षेत्र के लिए] चल पड़े।

(७) जलहरण (मात्रावृत्त २०४)—

खुरखुर (खुखुदि-पाठा०) खुदिखुदि (खुलुकि खुणकि-पाठा०) महि
घघररव कलइ णण णण गिदि (गृदि-पाठां०) करि (रङ्ग-पाठां०) तुरअ
चले। टटट गिदि (गृदि-पाठां०) पलइ टपु धसइ धरणि धर (ओरअ
वपु-पाठां०) चकमक करि (चचचमक-पाठां०) बहु (चउ-पाठां०)
दिसि चमले (चमरे-पाठां०)।

चलु दमकि दमकि बलु (दपु धमकि द्रनकि द्रन-पाठां०) चलइ पइक बलु
घुलकि घुलकि करि करि (घन घगंक करि घन-पाठां०) चलिआ।

बर मणु सअल (ससर, सबर-पाठां०) कमल विपख हिअअ सल
हमिर (हविर-पाठां०) बीर जब रण (जट्टि रणे-पाठां०) चलिआ॥

अर्थ—[घोड़ों के] खुरों से खूंदी जाकर (खूंदी और तोड़ी जाकर-पाठां०) मही घड-घड रव करने लगी जब उसके ऊपर हिनहिनाते हुए वे तुरङ्ग (उत्साहपूर्वक-पाठां०) चल पड़े। उनकी टापें 'टट' 'टट' करके पड़ रही थीं, [जिस के कारण] धरणीधर (उरगशेप का वपु-पाठां०) धँसा जा रहा था; उनकी चामरें बहुतसी (चारों-पाठां०) दिशाओं में चमक रही थीं; दर्प से 'धमक' और 'द्रनक' पदध्वनि करता हुआ पदाति-दल चल रहा था और 'घुड़' 'घुड़' (घन घन-पाठां०) करता हुआ हस्ती-दल चल पड़ा था; यह समस्त श्रेष्ठ मानसों को लिए कमल और विपक्ष के हृदयों के लिए शल्य [तुल्य] हुआ जब वीर हम्मीर रण के लिए चले।

(८) क्रीडाचक्र (वर्णवृत्त १८३)—

जहाँ भूत बेताल (बेआल-पाठां०) णच्चंत गावंत खाए कबन्धा।
सिआ फार फेक्कार हक्का रवन्ता फुले कण्ण रन्धा॥

कआ टुट्ट फुट्टेइ मंथा कबन्धा णचंता हसंता।
तहां बीर हम्मीर (हम्बीर-पाठां०) संग्राम मज्झे तुलंता जुअंता॥

अर्थ—जहाँ भूत-बेताल नाचते, गाते और कबन्धों को खा रहे थे, जहाँ शिवा (शृगाली) कराल रूप से फेकरती हुई हाँक काख कर रही थी, जिससे कर्ण-रंध्र फूटे

जा रहे थे, जहाँ शरीर टूट-फूट रहे थे और मस्तक तथा कबन्ध नाच-हंस रहे थे, वहाँ वीर हम्मीर संग्राम के मध्य में तोड़-जोड़ रहे थे।

इन छंदों के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न स्वतः उठते हैं, जिन पर एक-एक करके संक्षेप में नीचे विचार किया जाता है।

पहला प्रश्न इनके सम्बन्ध में यह उठता है कि ये छंद एक ही हम्मीर के सम्बन्ध के हैं अथवा एक से अधिक हम्मीर नामधारी शासकों के, क्योंकि हम्मीर नामधारी शासक एक से अधिक हुए हैं; साथ ही यह भी विचारणीय है कि ये एक ही रचना के हैं अथवा हम्मीर के सम्बन्ध की एक से अधिक रचनाओं के। ये छंद कदाचित् एक ही हम्मीर के विषय के और एक ही रचना के हैं, यह बात न केवल छंदों की भाषा-शैली और विषय के समान होने से ज्ञात होती है, वरन् इससे भी कि इन छंदों में परस्पर कोई विरुद्ध-कथन अथवा पुनिरुक्ति नहीं है।

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि इन छंदों की रचना मुक्तकों के रूप में हुई थी अथवा किसी प्रबन्ध काव्य के उपक्रम में और वस्तुतः उक्त रचना का काव्यरूप क्या रहा होगा। इन छंदों में पुनरुक्ति नहीं दिखायी पड़ती है और मुक्तकों की भाँति ये छंद सर्वथा स्वतन्त्र भी नहीं हैं, प्रसंग-सापेक्ष्य हैं, इसलिए ये समस्त छंद किसी प्रबन्धकाव्य के ज्ञात होते हैं। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि ये छंद आठ विभिन्न वृत्तों के हैं। मुक्तक काव्य-रूपों में इस प्रकार का छंद-वैविध्य नहीं होता है, वह भी उपर्युक्त परिणाम की पुष्टि करता है। इस प्रकार का छंद-वैविध्य प्राचीन हिन्दी की रचनाओं में 'रासो' काव्यरूप में ही पाया जाता है। इसलिए यह रचना 'रासो'-परम्परा की ज्ञात होती है।

तीसरा प्रश्न यह उठता है कि इन छंदों का रचयिता कौन है। इन छंदों में कवि की छाप नहीं मिलती है। श्री राहुल सांकृत्यायन ने ऊपर के जिन छंदों में भी 'जज्जल' नाम आता है, उन्हें जज्जल-कृत माना है[1] किन्तु यह मान्य नहीं है। जिन छंदों में भी 'जज्जल' आता है, उनमें वह एक वीर योद्धा के रूप में रचना का पात्र बन कर आता है, जो स्वामी के कार्य के लिए अपने प्राणों की आहुति करने जा रहा है, अथवा वह हम्मीर की सेना का अग्रणी है। ऊपर के छंदों में से एक में भी ऐसा नहीं है कि बिना कथा के एक पात्र के रूप में आए भी उसका नाम आता हो।

१. हिन्दी काव्य धारा, पृ० ४५२।

शार्ङ्गधर रचित एक 'हम्मीर रासो' माना जाता रहा है, किन्तु इन छंदों की रचना शार्ङ्गधर के द्वारा हुई है, यह मानने के लिए कोई निश्चयात्मक प्रमाण नहीं है।

चोथा प्रश्न यह उठता है कि इन छंदों को रचना कब हुई होगी। इन छंदों में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सके कि ये हम्मीर के समय में ही रचे गए होंगे। इनका काल-निर्धारण 'प्राकृत-पैंगल' के संकलन-काल-निर्धारण की सहायता से ही कुछ किया जा सकता है। 'प्राकृत-पैंगल' में संकलन-काल दिया हुआ नहीं है, किन्तु उसमें हम्मीर के कुछ परवर्ती चंडेश्वर तक की प्रशस्ति का एक छंद आता है (मात्रावृत्त १०८) जो हरिब्रह्मरचित है और चंडेश्वर मिथिलाधिप हरि सिंह (सं० १३७१-१३८२) के मंत्री थे।[1] यदि चंडेश्वर की इस प्रशस्ति को उनकी समकालीन रचना मान लिया जाए और 'प्राकृत-पैंगल' का संकलन उक्त छंद के रचना-काल के पचास वर्ष बाद माना जाए तो 'प्राकृत-पैङ्गल' का संकलन-काल सं० १४२५ के लगभग ठहरता है। फलतः उपर्युक्त हम्मीर सम्बन्धी छंदों की रचना सं० १४२५ के बाद की न होनी चाहिए, अभी हम कदाचित् इतना ही कह सकते हैं। भाषा का साक्ष्य भी इस परिणाम का समर्थन करता है। अभी तक हम्मीर के सम्बन्ध में प्राप्त सबसे प्राचीन कृति सं० १४६० के लगभग नयचंद्र सूरि द्वारा रचित 'हम्मीर महाकाव्य' है जो संस्कृत में है। ये छंद अवश्य ही उसके पूर्व की रचना प्रतीत होते हैं, इसलिए अत्यधिक महत्व के हैं।

पाँचवाँ प्रश्न यह उठता है कि इन छंदों में आये हुए उल्लेख इतिहास की कसौटी पर कैसे उतरते हैं। इन छंदों में निम्नलिखित विषय आते हैं—

(क) हम्मीर का किसी म्लेच्छ शासक से युद्ध (मात्रावृत्त ७१, ९२),

(ख) हम्मीर का [दिल्ली के] सुल्तान से युद्ध, जिसमें हम्मीर की ओर से जज्जल भी सम्मिलित होता है (मात्रावृत्त १०६),

(ग) हम्मीर की खुरासान-विजय और उसके अनन्तर उसका दिल्ली में प्रवेश (मात्रावृत्त १४७, १५१),

(घ) हम्मीर द्वारा मलय, चोल, गुर्जर, मालव और खुरासान पर [विभिन्न समयों में] की गई विजय (मात्रावृत्त १५१).

---

1. हिन्दी काव्य धारा, पृ० ४५२।

(ङ) हम्मीर का रण-प्रयाण (मात्रावृत्त १९०, २०४),

(च) हम्मीर का युद्ध (वर्णवृत्त १८३), और

(छ) जज्जल का हम्मीर का मंत्री होना (मात्रावृत्त १४७),

उपर्युक्त में से (ङ) तथा (च) के विषय कौन से युद्ध हैं, यह अनिश्चित रह जाता है, और (क) का म्लेच्छ शत्रु कौन है, यह भी निश्चित रूप से नहीं ज्ञात होता है। वह दिल्लीपति हो सकता है और खुरासान पति भी, जिनका स्पष्ट उल्लेख अन्य कतिपय छंदों में होता है।

(ग) में उसकी अनेक देशों पर हुई विजयों का उल्लेख किया गया है। इनमें से मालव-विजय का समर्थन हम्मीर के समय के बलवन (पूर्ववर्ती कोटा राज्य) के एक शिलालेख से भी होता है।[1] अन्य विजयों के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक समर्थन प्राप्त नहीं है। इन विजयों में से सबसे अधिक विचारणीय खुरासान की है, जिसके प्रसंग में हुए युद्ध का वर्णन भी उपर्युक्त (ग) में हुआ है। यदि वह युद्ध इतिहासानुमोदित नहीं है, तो इन छंदों की रचना हम्मीर के समय में हुई मानना कठिन होगा। इस प्रसंग में यह अवश्य जानने योग्य है कि कवि ने हम्मीर की दिग्विजय का उल्लेख किया है। यदि प्राचीन समसामयिक प्रशस्तियों में दिग्विजय के उल्लेखों में इस प्रकार की अवास्तविक विजयोल्लेख की रूढ़ि मिलती हो, तभी इन छंदों को समसामयिक रचना माना जा सकेगा।

उपर्युक्त (छ) का कथन भी विचारणीय है। जज्जल हम्मीर का मंत्री था, यह किसी भी अन्य साक्ष्य से समर्थित नहीं होता है। मुसलमान इतिहास-लेखक इस नाम का उल्लेख नहीं करते हैं। हिन्दू लेखक केवल उसका हम्मीर के एक सामन्त के रूप में उल्लेख करते, जो उसके साथ अलाउद्दीन से लड़ता हुआ अपने प्राणोत्सर्ग करता है। उदाहरणार्थ —

(१) विद्यापति ने अपनी 'पुरुष परीक्षा' में जाज (इन छंदों के जज्जल) को 'योद्धा' मात्र कहा है : उक्त रचना में हम्मीर कहता है—

के के यायदेव प्रभृतयो योधा।[2]

मंत्री के रूप में 'पुरुष परीक्षा' की हम्मीर कथा में रायमल्ल और रामपाल आते हैं—

---

१. इपिग्राफिया इंडिका, भाग १९, पृ० ४५; इंडियन एंटीक्वेरी, भाग ८ पृ० ६३।

२. पुरुष परीक्षा, राजदरभंगा यंत्रालय संस्करण (१८८८ ई०), पृ० १५।

तत्र भग्नोधर्मं दृष्ट्वा रायमल्लं रामपाल नामानौ हम्वीर देवस्य सचिवौ दुष्टौ यवन राज मागत्य मिलितौ तावचुतः ।[१] यदि जाजदेव को भी सचिव माना गया होता, तो उसको भी सचिव कहा जाता ।

(२) सं० १४६० के लगभग रचे हुए नयचन्द्र सूरि के 'हम्मीर महाकाव्य' में जाजदेव हम्मीर के अष्टप्रमुख पार्षदों में अवश्य है ।[२] किन्तु उसे उसमें भी कहीं सचिव या मंत्री नहीं कहा गया है ।

(३) सं० १५३८ में रचे गए भाणकृत 'हम्मीर चउपई' नामक हम्मीर-चरित्र में जो अप्रकाशित है और जिसका परिचय अन्यत्र दिया जायगा—जाज हम्मीर का पाहुना है, जिसे हम्मीर जमहर (जौहर) करने के पूर्व घर जाने का अनुरोध करता है, किन्तु जो घर न जाकर हम्मीर के साथ ही अपने प्राणों की आहुति युद्ध-स्थल में देता है—

जाजा तु घरि जाह तुं परदेसी प्राहुणउ ।
म्हे रहीया गढ़ माहि गढ गाढउ मेल्हा नहीं ॥२४६॥

वीरम दे हम्मीर दे मीर नइ महिमा साह ।
भाटनइ जाज प्राहुणो ए रहीया गढ माहि ॥२७७॥

इस रचना में भी रणमल और रायपाल हम्मीर के प्रधान हैं । फलतः जाज हम्मीर का मंत्री था, यह मानने के कोई प्रमाण नहीं हैं ।

इस प्रसंग में यह दर्शनीय है कि ऊपर 'प्राकृत-पैङ्गल' की जिन दो प्रतियों के पाठांतर दिये गए हैं । उनमें पाठ 'मंतिवर' के स्थान पर 'मल्लवर' है । अतः यह स्पष्ट है कि जाज को एक योद्धा ही इन छंदों में कहा गया होगा और पाठान्तर की प्रतियों का पाठ ही स्वीकार्य होना चाहिए ।

---

१ पुरुष परीक्षा, राज दरभङ्गा यंत्रालय संस्करण (१८८८ ई०), पृ० १५।

२ हम्मीर महाकाव्य, १०।३३-३४ ।

संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। किन्तु अपने आकार की विशालता तथा भाषा की दुरूहता के कारण इसका यथोचित रीति से प्रचार नहीं हो सका है। यद्यपि यह हिन्दी की उच्चतम कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में देश के प्रायः समस्त विश्वविद्यालयों में रखा हुआ है, किन्तु आंशिक रूप में ही—कहीं पर कोई समय निर्धारित है तो कहीं पर कोई। प्रकट है कि ६६ समयों के ग्रंथ का यह आंशिक अध्ययन उसका ठीक-ठीक परिचय नहीं दे पाता। इतना ही नहीं, वह उसका गलत परिचय भी दे सकता है। यदि वह ग्रंथ के प्रक्षिप्त अंशों में का हो—और ग्रंथ के समस्त अश प्रामाणिक हैं यह अभी तक प्रमाणित नहीं हो सका है। ऐसी दशा में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी और श्री नामवर सिंह का 'पृथ्वीराज रासो' का एक संक्षिप्त संस्करण प्रस्तुत करने का प्रयास निस्सन्देह श्लाघ्य है। आरम्भ में द्विवेदी जी द्वारा लिखित एक संक्षिप्त भूमिका है, और अन्त में दो परिशिष्ट हैं, जिनमें से प्रथम परिशिष्ट में श्री नामवर सिंह जी द्वारा 'रासो काव्य की परम्परा' 'पृथ्वीराज रासो की प्रतियाँ तथा रूपान्तर', 'पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता', 'पृथ्वीराज रासो का काव्य-सौष्ठव', 'पृथ्वीराज रासो की भाषा' तथा 'भाषा सम्बन्धी कतिपय विशेषताएँ' शीर्षकों के अन्तर्गत ग्रंथ के विषय में संक्षिप्त ऐतिहासिक और साहित्यिक विवेचन है और दूसरे परिशिष्ट में 'शब्दार्थ' हैं। ये अंश संक्षिप्त होने पर भी विद्यार्थियों और साधारण पाठकों के लिए उपयोगी हैं। शब्दार्थ सम्बन्धी परिशिष्ट कुछ और पूर्ण होता तो अच्छा था, क्योंकि ग्रंथ के अनेकानेक कठिन और आवश्यक शब्द उसमें आने से रह गए हैं। किन्तु हो सकता है कि इनमें से कुछ इसलिये रह गये हैं कि उन्हें सम्पादकों ने सरल समझा हो, और कुछ इसलिये रह गये हों कि उनका अर्थ स्पष्ट न हुआ हो, अथवा उनका पाठ सन्दिग्ध हो। इस पिछली परिस्थिति में जबरदस्ती कोई अर्थ देने की अपेक्षा यह अच्छा ही होता है कि मौन रहा जाय।

किन्तु इतना ही नहीं, यह संक्षिप्त संस्करण इस विश्वास के साथ भी प्रस्तुत किया गया है कि चंद की मूल रचना कुछ इसी के आस-पास होगी।[1] और इसी लिए संकलन निम्नलिखित स्थापनाओं के आधार पर किया गया है :

१. "उन दिनों कथाएँ दो व्यक्तियों के संवाद के रूप में लिखी जाती थीं। चंद ने भी रासो को शुक और शुकी के सम्बन्ध के रूप में लिखा था।"

२. "चंद बरदाई का यह काव्य 'रासक' भी है, जो गेय-काव्य हुआ करता था, जिसमें मृदु और उद्धत प्रयोग हुआ करते थे।"

३. " 'सन्देश रासक' की एक उक्ति तथा एक-दो प्राकृत गाथाएँ भी रासो में पायी जाती हैं।"

४. " 'सन्देश रासक' में बीच-बीच में कवि सूचना देता है कि अमुक पात्र ने अमुक छंद में अपनी बात कही। उसी प्रकार रासो में भी बीच-बीच में कर दिया गया है।"

५. "वीर रस की प्रधानता होने के कारण चंद ने छप्पय छंदों का प्रयोग अधिक किया था, इस दृष्टि से निम्नलिखित प्रसंग प्रामाणिक जान पड़ते हैं—(१) आरम्भिक अंश, (२) इञ्छिनी विवाह, (३) शशिव्रता का गन्धर्व विवाह, (४) तोमर पाहार का शहाबुद्दीन को पकड़ना, (५) संयोगिता का जन्म, विवाह तथा इञ्छिनी और संयोगिता की प्रतिद्वन्दिता और समझौता। उन अंशों में भाषा में उस प्रकार की बेडौल और बेमेल ठूँस-ठाँस नहीं है और कवित्त का सहज प्रवाह है।"

६. "इन अंशों में चंद केवल कल्पना-विलासी कवि ही नहीं, निपुण मंत्र-दाता के रूप में भी सामने आते हैं।"

७. "साधारण भारतीय कथाओं में कथाओं को अभीष्ट दिशा में मोड़ने के लिए कुछ (जो बतायी गई हैं) कथानक-रूढ़ियों का व्यवहार हुआ है। लगभग इन सभी कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग 'पृथ्वीराज रासो' में किया गया है।"

८. "शोभा चाहे प्रकृति की हो या मनुष्य की हो, परम्परा-प्रचलित रूढ़ उपमानों के सहारे ही निखरी है।"

---

१. भूमिका में

९. "अधीनस्थ सामन्तों की स्वामि-भक्ति और पराक्रम अत्यन्त उज्ज्वल रूप में प्रकट हुआ है।"

१०. "छंदों का परिवर्तन बहुत अधिक हुआ है, पर कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आयी है। १२ वीं १३ वीं शती के अपभ्रंश-साहित्य में छंदों का यह परिवर्तन बहुत अधिक हो गया था।"

११. "वर्तमान रासो में युद्धों का प्रसंग बहुत अधिक है और शहाबुद्दीन तो इसमें हर मौके-बेमौके अनायास आ पड़ता है। अधिकतर भट्ट भणन्त और गलत तिथियों का हिसाब ऐसे प्रसंग में ही आता है। ऐसा कहने में कुछ भी संकोच नहीं मालूम पड़ता कि ये युद्धों के अनावश्यक विस्तारित वर्णन, चौहान और कमधुज्ज के सरदारों के नामों की सूची आदि बातें परवर्ती ठूँस-ठाँस है।"

१२. "इधर रासो के अनेक संक्षिप्त संस्करणों का पता लगा है और पण्डितों में यह जल्पना–कल्पना आरम्भ हुई है कि इन्हीं छोटे संस्करणों में से कोई रासो का मूल रूप है या नहीं। अभी तक इन संस्करणों का जो कुछ विवरण देखने में आया है, उससे तो ऐसा ही लगता है कि ये सब संस्करण रासो के संक्षेप रूप ही हैं।"

अतः रासो के मूल पाठ-निर्धारण की दृष्टि से इन स्थापनाओं पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक होगा। कथाओं का संवादों के रूप में होना इस विषय में कोई विश्वसनीय आधार नहीं हो सकता, इसकी पुष्टि में इतना ही बतलाना पर्याप्त होगा कि पैंतालीसवें समय में संयोगिता के अवतार ग्रहण करने की जो कथा है वह भी इसी प्रकार शुक-शुकी संवाद के रूप में है, किन्तु इसे द्विवेदी जी ने स्वतः प्रक्षिप्त माना है[1] और इस संस्करण में स्थान नहीं दिया है। पुनः 'रासो-परम्परा' में यह संवाद-रूढ़ि व्यापक रूप से मान्य भी नहीं थी, क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो' के निकट समसामयिक 'बीसलदेव रासो' में ही यह रूढ़ि हमें नहीं मिलती।

जहाँ तक रासक-काव्यों के गेय तथा मृदु और उद्धत प्रयोग युक्त होने का प्रश्न है, वह अंश भी, जो उस संस्करण में नहीं सम्मिलित किया गया है, गेय तथा मृदु और उद्धत प्रयोग युक्त है।

---

१. हिन्दी साहित्य का आदि काल, पृ० ६४-६५

'सन्देश रासक' की कोई उक्ति यदि रूप बदल कर आ गई है तो आश्चर्य न होना चाहिए--यह तो बहुधा हुआ करता है, किन्तु उसकी जो दो प्राकृत गाथाएँ रासो में आ गई हैं वे तो निश्चित रूप से प्रक्षिप्त होंगी, क्योंकि कोई भी–साधारण से साधारण प्रतिभा का कवि भी—ऐसा न करेगा कि अपने हजारों छंदों के काव्य में दो-चार छंद किसी पूर्ववर्ती कवि की रचना से ज्यों-का-त्यों ला कर रख दे। इस प्रकार की बातें प्रायः पाठकों के द्वारा होती हैं। यदि प्रसंगोपयोगी अथवा मिलती-जुलती उक्ति वाले कोई छंद उन्हें स्मरण रहते हैं तो वे प्रायः उन्हें हाशियों में लिख लेते हैं और इसके अनन्तर प्रतिलिपिकार प्रायः उन्हें मूल पाठ में सम्मिलित कर के उतार लेते हैं।

छंदों और उनके अनेक लक्षणों के उल्लेख उन अंशों में भी मिलते हैं जो इस संस्करण में सम्मिलित नहीं किये गए हैं–यथा 'रेवा-तट समय' में।

छप्पय निस्सन्देह इन अंशों में प्रमुख हैं, किन्तु अन्य अंशों में भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं और सम्पादकों ने इन अंशों के अतिरिक्त भी कुछ अंशों को संस्करण में सम्मिलित किया है यथाः बड़ी लड़ाई समय और बानबेध समय, और वही बात, जो ऊपर छंदों के सम्बन्ध में कही गई है, भाषा-शैली के सम्बन्ध में भी लागू होती है।

जहाँ तक चंद के निपुण मंत्रदाता होने का प्रश्न है, वह भी केवल संकलित अंश में नहीं, शेष अंश में भी उसी और लगभग उतनी ही मात्रा में पाया जता है।

कथानक–रूढ़ियों का प्रयोग तो अभिन्न रूप में और कदाचित् कुछ अधिक मात्रा में ही उस अंश में भी पाया जाता है जिसे सम्पादकों ने ग्रहण नहीं किया है। ठीक यही बात काव्य–रूढ़ियों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। इन रूढ़ियों का आधार कितना कच्चा है, यह स्वतः द्विवेदी जी के इन शब्दों से प्रकट होगा: "परवर्त्ती-काल में जिन लोगों ने उसमें प्रक्षेप किया है, वे चंद की इस प्रवृत्ति को अच्छी तरह पहचानते थे, इसीलिये प्रक्षेप करने वालों ने चुन-चुन कर के कथानक-रूढ़ियों और काव्य-रूढ़ियों का सन्निवेश किया है।"[1]

अधीनस्थ सामन्तों की स्वामि-भक्ति और पराक्रम उतने ही उज्जवल रूप में उस अंश में भी प्रकट हुए हैं जितने उज्जवल रूप में वे गृहीत अंश में प्रकट हुए है।

---

१ भूमिका से।

छंद-परिवर्तन की शैली के सम्बन्ध में भी वही बात लागू होती है और उस सम्बन्ध में भी द्विवेदी जी के शब्दों को उद्धृत किया जा सकता है : "अत्यधिक प्रक्षेप होते रहने के बाद भी 'पृथ्वीराज रासो' में यह (छंदोबहुलता) प्रथा सजीव रूप में वर्तमान है। अनुकरण करने वालों ने भी चंद की शैली को ठीक रूप में पकड़ा है और वर्तमान रूप में भी रासो के छंद जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कम्पन उत्पन्न करते हैं।"[1]

द्विवेदी जी का यह कथन अवश्य ठीक जान पड़ता है कि वर्तमान रासो में युद्धों का आधिक्य, विशेषतः शहाबुद्दीन का मौके-बेमौके आ पड़ना, प्रक्षेप-जनित ही ज्ञात होता है। युद्धों का अनावश्यक विस्तार और उनमें आयी हुई सामन्तों की नामावली आदि तो प्रकट ही भट्ट-भणन्त प्रतीत होते हैं। किन्तु सबसे अधिक विचारणीय बात अन्तिम है—क्या प्रकाशित बृहत् पाठ के अतिरिक्त पाये गए पृथ्वीराज रासो के मध्यम, लघु, और लघुतम पाठ क्रमशः अथवा स्वतंत्र रूप से उसके प्रक्षेप-मात्र हैं। निस्संदेह कुछ विद्वानों ने यह विचार उपस्थित किया है, किन्तु वास्तव में इस विचार का कोई दृढ़ आधार नहीं है, यह केवल एक अटकल है और ऐसी अटकल जिस पर किसी भी समझदार आदमी को विश्वास न कर लेना चाहिए।

इस अटकल का आधार, जहाँ तक प्रस्तुत लेखक को ज्ञात है, इतना ही कि इन छोटे-से-छोटे पाठों में भी कुछ-न-कुछ अनैतिहासिक बातें मिलती ही हैं। किन्तु किसी रचना में अनैतिहासिक बातें मिलना ही उसको अप्रामाणिक भी नहीं बना देता। कोई भी रचना अपने मूल-रूप में सुरक्षित हो सकती है और उसमें अनैतिहासिक बातें मिल सकती हैं। प्रस्तुत लेखक की समझ में 'पृथ्वीराज रासो' का सबसे बड़ा अपकार इस विचार ने किया है कि यह पृथ्वीराज के समकालीन किसी व्यक्ति की रचना है। इस संस्करण के सम्पादकों का भी यही विचार है। द्विवेदी जी इसमें पायी जाने वाली काल्पनिक बातों के समावेश का कारण काव्य की आवश्यकताओं को मानते हैं।[2] किन्तु सोचने की बात है कि किसी भी समसामयिक—विशेष रूप से आश्रित-कवि को क्या पड़ी थी कि वह नायक की माता तक का नाम बदल देता।

---

१. भूमिका में।

२. भूमिका में।

कर्पूरदेवी नाम में—जो सभी प्रकार से इतिहास से प्रमाणित है—ऐसी कौन-सी खराबी थी कि कोई समकालीन और जिम्मेदार कवि उसके स्थान पर 'कमला' कर देता ? किसी भी ऐसे कवि का कौन सा उद्देश्य सिद्ध हो सकता था नितान्त अनर्गल तिथियाँ और विस्तार देने में ? यह सही है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में कुछ छंद इस ग्रंथ के मिल जाते हैं। किन्तु इतने से ही यह प्रमाणित नहीं होता कि चंद नाम का कोई कवि पृथ्वीराज का आश्रित अथवा उनका समसामयिक था, जैसा कि सम्पादकों ने माना है।[1] स्वतः सम्पादकों ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के उन तीन छंदों में से, जो 'पृथ्वीराज रासो' में पाये जाते हैं, केवल एक को 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' में स्थान दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि शेष दो को वे भी कदाचित्-प्रामाणिक नहीं मानते हैं। उससे इतना ही प्रमाणित होता है कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में उद्धृत छंदयुक्त पृथ्वीराज और चंदसम्बन्धी कोई रचना पन्द्रहवीं शताब्दी तक बन चुकी थी।

वस्तुतः यह सारा-का-सारा प्रश्न पाठ-विज्ञान का है। विभिन्न पाठों की प्रतियाँ मिलने पर पाठ-विज्ञान के सिद्धान्त की सहायता से यह सर्वमान्य रूप से निश्चय पूर्वक बतलाया जा सकता है कि ग्रंथ के जो चार विभिन्न पाठ मिलते हैं उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है, कौन किसका पूर्वज है और वह पूर्वज मूल पाठ के कितना निकट माना जा सकता है, अथवा कोई किसी का पूर्वज नहीं है—सभी एक सामान्य पूर्वज सन्तानें हैं और वह सामान्य पूर्वज कवि का मूल पाठ हो सकता है या नहीं। किन्तु यहीं पर हिन्दी के सम्पादन-कार्य की सबसे बड़ी कठिनाई सामने आती है जिनके पास आवश्यक प्रतियाँ हैं, वे उस कार्य के लिये उन्हें देना नहीं चाहते, विशेष रूप से उस समय जब कि उस सामग्री के आधार पर स्वतः कभी फुरसत से आगे-पीछे कुछ करना चाहते हैं। ऐसी दशा में प्रस्तुत के समान प्रयासों के अतिरिक्त साहित्यिक क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए कोई चारा नहीं रह जाता है और प्रतियों का आधार लिये बिना एक से अधिक पाठों वाले किसी भी ग्रन्थ के निर्धारित पाठ के विषय में उपर्युक्त प्रकार की शंकाएँ बनी रह जाना स्वाभाविक है। फलतः हम 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' के रूप में इस प्रयास का हृदय से स्वागत करते हैं। यह प्रयास सम्पूर्ण-रासक-परम्परा के गहरे अध्ययन का परिणाम है और इस कारण इसके सम्पादकगण हमारे बधाई के पात्र हैं।

---

१. भूमिका तथा परिशिष्ट

पृथ्वीराज रासो के तीन पाठों का आकार-संबंध

'पृथ्वीराज रासो' के सम्बन्ध में जो कार्य हुआ है, वह प्रायः उसके छपे हुए संस्करण को लेकर किया गया है। गत दस-बारह वर्षों के पूर्व तो उसको लेकर उठाये गए समस्त वाद-विवाद केवल इसी छपे हुए संस्करण के आधार पर हुए थे। यह तो अभी थोड़े दिनों पहले की बात है कि विद्वानों का ध्यान उसकी उन प्रतियों पर भी गया जो आकार-प्रकार में सभा के संस्करण से किंचित् भिन्न हैं। जब यह देखा गया कि सभा के पाठ की तुलना में आकार के छोटे पाठों में उत्तरोत्तर अनैतिहासिक तत्व कम हैं, यद्यपि उनका सर्वथा अभाव किसी पाठ में भी नहीं है, तो अनुमान यह किया गया कि ये उत्तरोत्तर लघुतर पाठ सम्भवतः अपेक्षाकृत वृहत्तर पाठों की तुलना में प्राचीनतर होंगे। किन्तु साथ ही यह भी देखा गया कि लघुतर पाठों में पाये जाने वाले स्थलों पर प्रायः उतनी ही अनैतिहासिकता है जितनी वृहत्तर पाठ में है। इसलिए फिर यह कहा गया कि ये लघुतर पाठ वास्तव में प्राचीनतर न होकर वृहत्तर के बाद के हैं, यह अवश्य है कि उनके संक्षिप्त रूप होने के कारण ही आकार में लघुतर हैं। यहाँ पर पाठालोचन की एक अत्यन्त उलझी हुई समस्या उपस्थित हो गई और उस समस्या को सुलझाने के स्थान पर यह मान लेना ही अधिक सुगम और निरापद समझा गया कि लघुतर पाठ वृहत्तर के संक्षिप्त रूप मात्र हैं, इसलिए हम देखते हैं कि अब विद्वानों का सुझाव सर्वथा इसी दूसरे मत के पक्ष में हो गया है।[1] 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी के प्राचीनतम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में से है। उसके सम्बन्ध में उठाये गए इस महत्वपूर्ण विषय को यों ही न छोड़ देना चाहिए। उसकी पूरी छान-बीन होना आवश्यक है।

१, उदाहरणार्थ डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य (पृ० ६५) में लिखा है : "इधर रासो के अनेक संक्षिप्त संस्करणों का पता लगा है, और पंडितों में यह जल्पना कल्पना आरम्भ हुई है कि इन्हीं छोटे संस्करणों में से कोई रासो का मूल रूप है या नहीं। अभी तक इन संस्करणों का जो कुछ विवरण देखने में आया है, उससे तो ऐसा ही लगता है कि ये संस्करण रासो के संक्षेप रूप ही हैं।"

प्रस्तुत लेख इसी समस्या को लेकर लिखा गया है। यों तो पृथी राज रासो के पाठ चार बताये जाते हैं—बृहत्, मध्यम, लघु और लघुतर, किन्तु अंतिम के सम्बन्ध में अभी तक मेरी जानकारी कुछ नहीं है, इसलिए प्रस्तुत लेख में केवल प्रथम तीन पाठों को लेकर ही विचार किया गया है।

इन तीन पाठों की अनेक प्रतियाँ मिलती हैं। बृहत् पाठ की कुछ प्रतियों को लेकर सभा का संस्करण संपादित किया गया था, मध्यम पाठ की एक पूर्ण प्रति सं० १७९२ की है जो श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में है, और जिसकी प्रतिलिपि प्रयाग साहित्य सम्मेलन में है, तथा लघुपाठ की कुछ प्रतियाँ हैं जो अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में हैं। इन्हीं को लेकर प्रस्तुत कार्य किया गया है और उद्धरणों के स्थल-संकेत इन्हीं के अनुसार किये गए हैं।

प्रस्तुत समस्या पर अनेक सूत्रों से प्रकाश पड़ सकता है और उस पर यथा संभव इन सभी सूत्रों से प्रकाश डालने का प्रयत्न होना चाहिए। मैं अभी केवल एक सूत्र को लेकर उक्त उलझन को सुलझाने की चेष्टा करूँगा वह सूत्र है मुख्यतः बलाबल सूचक। यदि कोई पाठ किसी का संक्षिप्त रूपांतर है, तो भी यह तो नहीं होना चाहिए कि यदि बृहत् या मध्यम रूपों में कहीं पर जयचंद की सेना का बल 'तीसलष्प तोषार' बताया गया हो तो लघु पाठ में उसको घटा कर 'सहस बीस तोषार' कर दिया जाए।[1] किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि लघु पाठ की तुलना में बलाबल के सम्बन्ध में मध्यम अधिक अतिशयोक्ति पूर्ण है, तो मध्यम की तुलना में बृहत् उससे भी आगे बढ़ा हुआ है। ग्रंथ से ऐसे इक्यावन स्थल लेकर [illegible] दृष्टि से निरीक्षण करने पर बात स्पष्ट हो जाती है—

(१) स० ४५·२०२·३: तीस लष्ष तोखार लष्ष गैवर गल गज्जहिं।
ना० १३.१ : ” ” ” ।
अ० ३. कवित्त १ : सहस बीस ” ” ।
प्रसंग : जयचंद के श्वसुर मुकुन्द देव का बल-वैभव।

---

१. उदाहरण के लिए डॉ० द्विवेदी के संक्षिप्त संस्करण को लिया जा सकता है। वह निश्चित रूप से सभा के संस्करण का संक्षिप्त रूपांतर है, किन्तु बलाबल सम्बन्धी जितने भी उल्लेख उसमें आते हैं वे सभी यथा सभा के पाठ में हैं।

(२) स० ४५.२०२.४: उमड़ लष्ष पनदलह पुलान दग छुग निरज्जहिं ।
ना० १३.१ : रात्त लष्ष " " " ।
अ० ३. कवित्त १ : सत्त लष्ष " " " ।
प्रसंग : यथा (१) का ।

(३) स० ६१.७२५ : आभरा रावन सथ्थ चलि अयुत एक भट सथ्थ ।
ना० ३२.६४ : " " " ।
अ० ६. दोहा ३० : " अतिय सहस " ।
प्रसंग : जयचंद का वैभव ।

(४), (५) स० ६१.६०० : तीस करिय मुत्तिय सघन द्वै सै तुरंग बनाय ।
ना० ३२.१४१ : दस हथ्थिय " " जन तुरंग मिति भाय ।
अ० ६. दो० ४३ : " " बहु भाय ।

(६) स० ६१.१०५६ : सोरह सहस निशान भनी कुहराम गूअ भर ।
ना० ३३.१४ : सवा लाख नीसान " " ।
अ० ६. कवित्त ६ : सोरह सहस " " ।
प्रसंग : जयचंद द्वारा पृथ्वीराज के विरुद्ध भेजे गए दल का वैभव ।

(७) स० ६१.१०६१ : दस असिय लष्ष पष्षर परहि एक भुअन आकंर भय ।
ना० ३३.१६ : एक लष्ष पष्षर " " ।
अ० ६. कवित्त ११ : एक लष्ष पष्षर " " ।
प्रसंग : यथा (५) का ।

(८) स० ६१.१५७५ : पन पंच सौ कोस कहै दिल्ली अग कन्नौं ।
ना० ३४.७६ : पंच षट्टि सौ कोस " ।
अ० ११. कवित्त २७ : " " " ।
प्रसंग : कनौज से दिल्ली की दूरी ।

(९) स० ६१.१७१९ : सामंत निघट रनह परिश नृपति सपिढ्डिय पंच सर ।
ना० ३५.६ : तेरह " ।

अ० ११' कवित्त ३ :　　”　　”　　।

प्रसंग : कन्नौज के युद्ध में पृथ्वीराज के काम आये हुए सामन्तों की संख्या ।

(१०) स० ६१'१७५७ : सहस वीर भर अप्पवर इक रष्षे रिंध ।

ना० ३५'१२ : सहस बीस　　”　　”　　।

अ० ११' दोहा २ : सहस वीर　　”　　”

प्रसंग : पृथ्वीराज के एक-एक सामंत की तुलना में जयचन्द के सामंत का बल　　।

(११) स० ६१'२०४४ : विलसित काल करंक किय सहसति तीस गनिंद ।

ना० ३५'६३ :　　”　　”　　”　　।

अ० ११' दोहा १८ :　　”　　”　　बीस　　।

प्रसंग : कन्नौज के युद्ध में काम आने वाले वीरों की संख्या ।

(१२) स० ६१'२४०३ : काम बान हर नयन निडर नीडर भय सम्भ र

ना० ३६'४५ :　　”　　”　　”　　।

अ० १२'२३ : इक्क ”　　”　　”　　।

प्रसंग : जयचन्द की सेना से निड्डुर राय के युद्ध करते समय दिल्ली की ओर पृथ्वीराज के बढ़ने की दूरी ।

(१३) स० ६१'२७३७ : हेम हयगय अंबरह दासी सहस सत दीन ।

ना० ३८'५ :　　”　　”　　दासी दस सहस　　।

अ० १३' दोहा ४ : ”　　” दासी सहस सहून　　।

प्रसंग : जयचन्द द्वारा संयोगिता को दिया हुआ दायज ।

(१४) स० ६१'२४३४ : पंच अग्ग चालीस सत्त सामंत सुरत्तिय ।

ना० ३७'७ :　　”　　”　　”　　।

अ० १२' कवित्त १३ : सत्त अग्ग चालीस ”　　।

प्रसंग : पृथ्वीराज के साथ शेष रहे हुए सामंत जो जयचन्द से लड़े थे ।

(१५) स० ६१'२४३८ : घरि ध्धारि श्रोन असिबर झर्‌यो
मनहुँ धुम्म अग्गा सुझर ।

ना० ३७'६ :　　”　　”　　।

अ० १२· कवित्त १७ : दोइ घरिय " " ।
प्रसंग : जंधारा भीम का जयचन्द से मोर्चा लेना ।

(१६) स० ६१·२४५२ अ : घटी दून जुद्ध विहानं विहारं ।
ना० ३७·११ : " " पंचं " " ।
अ० १२· भुजंगी २ : " " " " " ।
प्रसंग : यथा (१५) का—कितने थोड़े समय में भीम ने जयचन्द की सेना का तहस-नहस कर डाला ।

(१७) स० ६१·२४५४ : घरिय च्यार रविरत्त पंगदल बल आहुट्यौ ।
ना० ३७·१६ : " " " " ।
अ० १२· कवित्त २० : घरिय तीन " " ।
प्रसंग : यथा (१४), (१५) का—कितनी देर तक भीम चारों ओर से झुकी हुई जयचंद की सेना का सामना करते हुए मारा गया ।

(१८) स० ६१·२४५८ : पंच सहस सै पंच लुथ्थि पर लुथ्थि
ना० ३७·१३ : पंच बीस आहुट्टि " "
अ० १२· कवित्त १८ : पंच बीस " " "
प्रसंग : कन्नौज के युद्ध में पृथ्वीराज का शौर्य ।

(१९) स० ६१·२४५८ : दो घरिय मोह मारुत बज्यौ
ना० ३७·१३ : " " "
अ० १२·कवित्त १८ : घरि इक्क " "
प्रसंग : तथा (१८) का ।

(२०) ६१·२४५८ : घरिय च्यारि दिन रह्यौ घरिय दुअ
ना० ३७·१३ : घरिय पंच " "
अ० १२· कवित्त १८ : " " "
प्रसंग : यथा (१८), (१९) का ।

(२१) स० ६४·३४ : जैत षंभ रोपयो लोह मन तीस मिलायौ ।
ना० ३६·२१ : " " सहस " ।
अ० १३· कवित्त ४ : " " तीस " ।
प्रसंग : जयस्तंभ का निर्माण ।

(२२-३०) स० ६४·१६६ तथा ना० ३६·६३ :
आज लियौ गज्जनौ आज तुरकानौ डंडौं ।
भोरौं आज गइंद आज सब सेन विहंडौ ।
आज जीत गोरी समूह पर दल वित्तारों ।
आज चंद की आन आज जन स्वामि उबारों ।
सोइ आज पैज बरदाइ भनि सम्भरि धनी सुधारिहौं ।
पुंडीर धीर इम उच्चरै आज मेछ दल मारिहौं ॥

अ० १३· कवित्त २० में समस्त 'आज' के स्थान पर 'काल्हि' है, केवल चरण ५ के 'आज स्थान पर ना० में 'करिय' है जो कदाचित् लिपि-प्रमाद के कारण हुआ है ।
प्रसंग : पृथ्वीराज की सभा में धीर की पुनः प्रतिज्ञा करना ।

(३१) स० ६४·३४६ : नव से जहाँ सिलार पास ठठ्ठे हंमीरह ।
ना० ३६·१२४ : " " " ।
अ० १३· कवित्त २३ : नव सै दस सिल्लार " ।
प्रसंग : गोरी की सेना का विस्तार, सेनापतियों की संख्या और उनके होते हुए धीर का प्रतिज्ञा का निर्वाह ।

(३२) स० ६४·३४६ : एक लाख साहन समुंद चवकोदह भोरह ।
ना० ३६·१२४ : नव गोरी " " " ।
अ० १३· कवित्त २३ : असीय लष्ष" " " ।
प्रसंग : यथा (३१) का ।

(३३) सा० ६४·३४६ : अठ्ठ लष्ष गुरधार मेघ जिम झर बरसंतह ।
ना० ३६·१२४ : " " " ।
अ० १३ कवित्त २३ : अद्ध लष्ष " " ।
प्रसंग : यथा (३१), (३२) का ।

(३४) स० ६६·४२४ : सिला एक पाषान हथ्थ तीसह बीय लंबिय ।
ना० ४२·१४५ : „ „ तीसह तनु „ ।
अ० १४· कवित्त १५ : „ „ „ „ ।
प्रसंग : वीरभद्र की कंदरा के ऊपर पड़ी हुई शिला का आकार ।

(३५-३६) स० ६६· ४२४ : द्वोइ दस कर चवसट्ठि सट्ठि अंगुल उदरंभिय ।

ना० ४२·१४५ : बीस हथ्थ चौराइ अँगुर चवसट्ठि उदंभिय !
अ० १४. कवित्त १५ : द्वादश हस्त चवष्ठ सट्ठि अंगुल उदरंभर ।
प्रसंग : यथा (३४) का ।

(३७) स० ६६·६२६ : दुअं दस कोस मिलान मिलान ।
ना० ४३·२ उवं दस कोस ” ” ।
अ० १५. मोतीदाम १ : उहां दस कोस ” ।
प्रसंग : पृथ्वीराज की गोरी के विरुद्ध रण-यात्रा ।

(३८) स० ६६.७७५ : जिंह ग्रहि छंड्यौ बार बेर सो आप अप्पकर ।
ना० ४३.५४ ” षट्टु बार ” ” ।
अ० १५. कवित्त १५ : ” सत्त बार ” ” ।
प्रसंग : गोरी का पृथ्वीराज के पराक्रम का उल्लेख करते हुए सामंतों से उसको पकड़ने की शपथ लेना ।

(३९) स० ६६·१४७८ : दहभारा कम्मान तोन सायक तेरह सै ।
ना० ४४.३८ ” ” सोहरसै ।
अ० १७. कवित्त १२ ” ” सोरहसै ।
प्रसंग : गोरी के एक सामंत उजबक खाँ का पराक्रम ।

(४०) स० ६७.१०८ : दिवस तीन पंथह बहिग गनी न अहनिसि संझ ।

ना० ४६.२५ ” तीस ” ” ” ।
अ० १८. दोहा ५: ” तीस ” ” ” ।
प्रसंग : चन्द की यात्रा ।

(४१) स० ६६.१२३३ : चौदह सै मफरद मियां मंसूर रुहिल्यौ ।
नाा० ४३.१६० : चौदह सहस " " " ।
अ० १६. कवित्त १० : " " " ।
प्रसंग : गोरी की सेना के उस अंश का बल जिसका सामना चामंड राय ने किया ।

(४२) स० ६६.१५३७ : हय हथ्थी त्रय बास (बीस) ग्रास उप्पर ग्रासंदे ।
ना० ४५.१४ : " बे बीस " " " ।
अ० १८. कवित्त ६ : " " " " " ।
प्रसंग : गोरी के साथ युद्ध करते हुए सामंतों का पराक्रम वर्णन ।

(४३) स० ४८.१६ : कै बार साहि बन्धयौ जेन ।
ना० २८.६ : त्रय : " " " ।
अ० ६. पद्धड़ी २ : तिहु " " " ।
प्रसंग : पृथ्वीराज के पराक्रम का वर्णन ।

(४४) स० ६१.२०४४ : बिलसित काल करंक किय सहसति तीस गनिंद ।
ना० ३५.६३ : " " " " " ।
अ० ११ दोहा १८ : " " " " बीस ।
प्रसंग : पृथ्वीराज जयचन्द के युद्ध में हताहतों की संख्या ।

(४५) स० : ६१.५२७ एक सहस संग्रह धुनिय महल जाम जयचन्द ।
ना० : ३२.३० एक सहस " " " ।
अ० : ६. दो० २८: सत्तसहस " " " ।
प्रसंग : जयचन्द का वैभव ।

(४६) स० ६६.७६६ : धरनि धरनि तिनबर गनत ते भर बीस हजार ।
ना० ४३.४८ : " " " " ।
अ० १५. दो० १८ : " " " पंच हजार ।
प्रसंग : गोरी के विरुद्ध युद्ध करते हुए पृथ्वीराज की सेना के योद्धाओं का बल ।

(४७-४८) स० ६६.७७० : बीस हजारन मद्धि दस जे आया बार सांमि ।
ना० ४३.४६ : " " " " ।

अ० १५. दो० १६ : पंच हजारहँ मद्धि दुइ " " ।
प्रसंग : यथा (४६) का ।

(४६) स० : में यह छन्द नहीं है ।
ना० ४३.५० : तिन महि, कवि गिन बीस सै... ।
अ० १५. दो० २० : " सौ सो भय हरन... ।
प्रसंग : यथा (४६) का ।

(५०) स० : में यह छंद नहीं है ।
ना० ४३.५० : तिन महि दस सै अरि दलन जे कढ्ढै गज दन्त ।
अ० १५. दो० २० : " दस दारुण दहन "
प्रसंग : यथा (४६) का ।

(५१) स० ६६.७७१ : तिन महि कबि गनि पञ्च से साष भाष द्रढ़ काज ।
ना० ४३.५१ : " " " " ।
अ० १५.२१ : " पंच प्रपंच से " " ।
प्रसंग : यथा (४७-४८) का ।

उपर्युक्त का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि वृहत् तथा मध्यम में ४६ स्थानों में से केवल १६ स्थानों पर बलाबल सम्बंधी समानता है, शेष स्थानों पर विषमता है; वृहत् और लघु में ४६ स्थानों में से केवल ५ स्थानों पर समानता है, शेष स्थानों पर विषमता है और मध्यम तथा लघु में ५१ स्थानों में से केवल २४ स्थान पर समानता है, शेष स्थानों पर विषमता है। यदि वृहत् से मध्यम या बृहत् से लघु, या मध्यम से लघु का संक्षेप हुआ होता, तो तीन में से किन्हीं भी दो पाठों में तो इस प्रकार की विषमता न होती। होता यह कि वृहत् की तुलना में मध्यम और लघु में और मध्यम की तुलना में लघु में अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक मिलती। किन्तु बात सर्वथा भिन्न मिलती है। दो चार अपवादों को छोड़ कर जो प्रतिलिपि-प्रक्रिया

में हो ही जाते हैं, जहाँ पर भी बलाबल सम्बंधी अन्तर है, लघु की अपेक्षा मध्यम में, मध्यम की अपेक्षा वृहत् में और मध्यम तथा लघु दोनों की अपेक्षा वृहत् में ही अतिशयोक्ति की प्रबलता है। इसलिए यह अनुमान निराधार है कि लघु और मध्यम वृहत् के अथवा लघु मध्यम का सक्षिप्त रूपान्तर है।

उपर्युक्त विवेचन में मैंने तीनों पाठों में मिलने वाले समान बलाबल के स्थल जान बूझ कर छोड़ दिए हैं, क्यों कि इस प्रकार की समानता तीनों पाठों के अलग-अलग एक ही मूल से निकले हुए होने पर भी होनी चाहिए।

'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिकता और रचना-तिथि

सं० १९४२ से, जब से बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में इस विषय पर कविराज श्यामल दास का लेख प्रकाशित हुआ, [1] रासो की ऐतिहासिकता और प्राचीनता पर बहुत विचार हुआ है। किन्तु कुछ दिनों पूर्व तक ये समस्त विचार उसके उस बृहत् पाठ को लेकर किए गए थे जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हुआ था। तब से इस रचना के तीन और मुख्य पाठ प्राप्त हुए हैं जिनको साधारणत: मध्यम, लघु और लघुतम कहा जाता है। मध्यम के प्रकाश में आने के कुछ ही बाद लघु पाठ प्रकाश में आया, इसलिए लघु को लेकर कुछ और विचार हुआ है और बृहत् तथा मध्यम की तुलना में इसमें अनैतिहासिक बातों की कमी देखकर कुछ विद्वानों ने इसे प्राय: ऐतिहासिक माना है। [2] इस पाठ की तीन प्रतियाँ बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में तथा एक-एक श्री अगर चंद नाहटा और श्री मोतीलाल खजानची के पास हैं। इधर कुछ वर्ष हुए, दो और प्रतियाँ 'पृथ्वीराज रासो' की मिली हैं जिनका पाठ अभी तक प्राप्त पाठों की तुलना में सबसे छोटा है : इनमें से एक मुनि पुण्यविजय जी को प्राप्त हुई थी, जिसकी उन्होंने प्रतिलिपि करा ली थी और दूसरी मुनि जिन विजय जी को प्राप्त हुई थी, जो उनके पास है।

यह लघुतम पाठ अभी तक मुझे प्राप्त नहीं हो सका है, इसलिए 'रासो' की ऐतिहासिकता और रचना-तिथि पर विचार करने के लिए लघु पाठ को ही ले रहा हूँ। लघु पाठ के प्राय: समस्त छंद मध्यम और बृहत् पाठों में भी मिलते हैं और

---

१. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बङ्गाल, १८८६, भाग १, १०५।

२. डॉ० दशरथ शर्मा: दि डेट एंड हिस्टारिसिटी ऑफ पृथ्वीराज रासो', इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग १६, पृ० ७३८।

मध्यम और बृहत् पाठों में उन छंदों में भी अतिशयोक्ति की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ी हुई है।[३] इसलिए इन तीनों में से लघु पाठ ही प्राचीनतर लगता है। किन्तु वह भी क्या वास्तव में ऐतिहासिक या प्राय: ऐतिहासिक है? इस प्रश्न पर विचार करने के लिए इस पाठ में आये हुए व्यक्तियों और उनके सम्बद्ध घटनाओं पर विचार करने की आवश्यकता है, जो नीचे अकारादि क्रम से किया जा रहा है। लघु पाठ की प्रतियों में से सब से अधिक प्रतिनिधि प्रतियाँ अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की हैं, इसलिए स्थल-निर्देश उन्हीं से संकेत द्वारा किया जा रहा है।

(१) **अनंगपाल तोमर :** कहा गया है कि यह दिल्ली का राजा था और इसकी एक पुत्री सोमेश्वर को विवाहित थी, जिससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ,[४] इसने पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य देकर बदरीनाथ की यात्रा की,[५] जो घटना सं० ११३८ मार्गशीर्ष शुक्ल ५, गुरुवार की है।[६]

किन्तु दिल्ली बीसलदेव (विग्रह राज) के द्वारा ही। जो कि आनल्लदेव (अर्णोराज) का पुत्र था, विजित हो चुकी थी, यह सोमेश्वर के सं० १२२६ के बिजोलिया के शिलालेख में दिया हुआ है।[७] सं० १२२० का बीसलदेव (विग्रहराज) का दिल्ली (सिवालिक) स्तंभ पर का अभिलेख[८] भी इस बात का प्रमाण है कि वह सं० १२२० के पूर्व उसके अधिकार में आ चुकी थी। हाँसी में मिले हुए पृथ्वीराज (पृथ्वीभट्ट) के सं० १२२४ के शिलालेख से ज्ञात होता है कि उस समय वहाँ के दुर्ग का प्रबन्धक गुहिलवंशी किल्हण था।[९] अतः यह प्रमाणित है कि पृथ्वीराज के समय में दिल्ली और हाँसी प्रदेश पर उसका ही शासन था, वह तोमरों के शासन में नहीं थीं।

चाहमानों के पूर्व अवश्य दिल्ली पर तोमरों का शासन था। सं० १३३७ का गयासुद्दीन बलवन का बाहर (जिला रोहतक) का पालम बावली का एक शिला-

---

३. दे० 'पृथ्वीराज रासो के तीन पाठों का आकार-सम्बन्ध', प्रस्तुत लेखक लिखित, प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित।

४. अ. २. दो० ६।

५. अ. दो० १८, साट० ४, कवि० ५, दो०, १६, २०, कवि० ६, उधो० ८; १८. कवि० ४।

६. अ. २. कवि० ४।

७. भांडारकरः इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दन इंडिया, पृ० ५१।

८. वही, पृ० ४८।

९. वही, पृ० ४६।

लेख है जिसमें कहा गया है कि हरियाना देश पर पहले तोमरों का शासन था, तब चहुवानों का और उनके बाद शक (तुर्क) राजाओं का हुआ जो शहाबुद्दीन से प्रारम्भ होता है।[1] सं० ११८६ में 'पार्श्व चरित्र की रचना करते हुए उसके रचयिता श्रीधर ने अनंगपाल (तृतीय) तोमर के राज्य-वैभव का वर्णन किया है।[2] इसलिए जिस अनंगपाल तोमर के सम्बंध में 'रासो' में उपर्युक्त कल्पना की गई है, उसका समय सं० ११८६ के लगभग पड़ता है।

(२) **अल्हन कुमार** : कहा गया है कि यह पृथ्वीराज का एक सामंत था जो शहाबुद्दीन के विरुद्ध उसके और पृथ्वीराज के एक युद्ध में लड़ा था।[3] यह पहले भीम का भट था,[4] यह पृथ्वीराज के साथ कन्नौज गया था[5] और वहाँ पर युद्ध करता हुआ मारा गया था।[6]

सं० १२०६ का किराडू का एक शिलालेख है जिसमें नाडोल के चाहमान महाराज आल्हणदेव को चौलुक्य कुमारपाल का सामंत कहा गया है।[7] इसके समय के नाडोल के दो ताम्र पत्र सं० १२१८ के भी प्राप्त हुए हैं[8] और सं० १२२० का बामनेरा एक ताम्रपत्र इसके पुत्र केल्हण का प्राप्त हुआ है जिसमें उसने अपने को महाराज कहा है। इसलिए आल्हण का देहान्त सं० १२१८ तथा सं० १२२० के बीच हो चुका था। यदि 'रासो' का अल्हन यही आल्हण है, तो वह भीम और पृथ्वीराज के राज्याभिषेक (सं० १२३५ और १२३६)[9] के पूर्व ही दिवंगत हो चुका था।

मदनपुर का एक शिलालेख सं० १२३५ का महाराजपुत्र आल्हणदेव का अवश्य है, जो बिकौर का शासक था। 'रासो' का अल्हन भी 'कुमार' है, इसलिए

१. वही, पृ० ८९।

२. डॉ० दशरथ शर्मा : 'दिल्ली का तोमर (तँवर) राज्य' : राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४, पृ० २०।

३. अ० ७. त्रो० २।

४. अ० ८. भुज० १।

५. वही।

६. अ० १२ दो० १४, कवि० ७, दो० १५, कवि० २३।

७. भांडारकर : इन्स्क्रिप्शन्स ऑव नार्दर्न इंडिया, पृ० ४४।

८. वही : पृ० ४६, ४७।

९. दे० नीचे 'भीम' और 'पृथ्वीराज' के शीर्षक।

दोनों एक प्रतीत होते हैं। किन्तु यह आल्हण देव किसी समय भी भीम का सामंत हो सकता था, इसमें संदेह है, क्योंकि बिकौर वर्त्तमान मध्यप्रदेश में है।

(३) **कन्हराय** : कहा गया है कि यह महाराष्ट्रपति था और कन्नौज के युद्ध में जयचन्द की ओर से लड़ा था।[१] महाराष्ट्र के इतिहास के अनुसार कृष्ण या कन्हार का समय सं० १३०४—१३१७ वि० है।[२] इस नाम का कोई अन्य महाराष्ट्र शासक उस युग में नहीं मिलता है, इसलिए 'रासो' का 'कन्हराय' महाराष्ट्र के इतिहास का यही कृष्ण या कन्हार है।

(४) **कर्ण** : कहा गया है कि डाहाल का शासक था और इसे जयचन्द ने बंदी किया था।[३] यह डाहल का प्रसिद्ध कलचुरि नरेश कर्णदेव है जिसके कई अभिलेख सं० १०९८ से मिलने लगते हैं। एक तो सं० १०९८ का बनारस का एक ताम्रपत्र है।[४] दूसरा सं० १११४ का सारनाथ का एक शिलालेख है।[५] तीसरा सं० १११७ का उसके समय का रींवा का शिलालेख है।[६] सं० ११२८ से उसके पुत्र यशःकर्ण देव के अभिलेख मिलने लगते हैं।[७] इसलिए कर्ण देव का देहान्त स० १११७ और ११२८ के बीच किसी समय होना चाहिए। डाहल का अन्य कोई शासक इस नाम का नहीं मिलता है, इसलिए 'रासो' का डाहल नरेश कर्ण यही कलचुरि कर्णदेव है।

(५) **कैंवास दाहिमा** : कहा गया है कि यह पृथ्वीराज का प्रधान[अमात्य] था।[८] एक प्राचीन शिलालेख पढ़कर इसने खट्टूपुर में गड़ा हुआ प्रचुर धन निकलवाया था[९] और इसने चौलुक्य भीम से लड़ कर विजयप्राप्त की थी,[१०]

---

१. अ० ११ ६।
२. भांडारकर : 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि डेकन' पृ० २०९।
३. अ० ६, भुज० ३।
४. भांडारकर : इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया, पृ० १६४।
५. वही, पृ० १६४।
६. वही, पृ० १६४।
७. वही, पृ० १६५।
८. अ० २, दो० ११।
९. अ० २, दो० १२—१५, कवि० ३, दो० १६, कवि० ४।
१०. अ० ४, कवि० ५ तथा परवर्ती छंद और खण्ड ५।

किन्तु यह पृथ्वीराज की कर्नाटकी एक दासी पर अनुरक्त हो गया था, जिसके कारण, इसे पथ्वीराज ने मार डाला।[१]

जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' में भी मंत्री कदंबवास का उल्लेख है, और उसमें कहा गया है कि उसी के संरक्षण में पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ था।[२] 'पृथ्वीराज विजय' को प्राप्त प्रति इसके कुछ ही अनन्तर खंडित है, इसलिए और अधिक वृत्त कदंबवास का उसमें नहीं मिलता है। जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा लिखित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में मंडलेश्वर कैमास का उल्लेख है, और कहा गया है कि जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ में पृथ्वीराज के विश्राम-काल में मध्यस्थता का कार्य इसी ने किया था।[३] इससे ज्ञात होता है कि वह विद्वान् था और धार्मिक विचारों में उदार भी था। कैवांस दाहिमा के पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य होने और पृथ्वीराज के द्वारा उसका वध किये जाने की एक कथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में संकलित 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में भी आयी है, यद्यपि उसमें वध का कारण राजनैतिक बताया गया है।[४] इस जैन-प्रबन्ध का रचना-काल अनुमान से चौदहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्द्ध होना चाहिए।[५] इसलिए कैवास (कदंबवास) का पृथ्वीराज का प्रधान अमात्य होना, उसका बुद्धिमान और विद्वान होना प्रमाणित है। किसी कारण पृथ्वीराज ने उसका वध किया, यह भी विश्वासनीय प्रतीत होता है। कहा जा सकता है कि उक्त प्रबन्ध में चंद के दो छंद भी उद्धृत हुए हैं, जो 'पृथ्वीराज रासो' में पाए जाते हैं, इसलिए उसका आधार 'रासो' ही होगा। किंतु पृथ्वीराज के सम्बंध की जो कथाएँ इस प्रबन्ध में आती हैं, वे 'रासो' में दी हुई उक्त प्रसंगों की कथाओं से नितान्त भिन्न हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज-विषयक इस जैन प्रबन्ध का आधार 'रासो' से भिन्न है, केवल 'रासो' के दो छंद उसी से या किसी अन्य सूत्र से लेकर उसमें रख दिये गए हैं।[६]

---

१. अ. खण्ड ७।

२. पृथ्वीराज विजय, सर्ग ६, श्लोक ४४।

३. अगरचन्द नाहटा: 'पृथ्वीराज की सभा में जैनाचार्यों के शास्त्रार्थ' हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ७१।

४. 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह'—संपा० मुनि जिनविजय, पृ० ८६।

५. प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित

६. देखिये अन्यत्र मेरा लेख 'पुरातन प्रबंध संग्रह और पृथ्वीराज रासो'।

(६) **गोइंद राय गुहलोत** : कहा गया है कि यह पृथ्वीराज का एक मुख्य सामंत था,[१] जो भीम-कैवांस युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा था।[२] यह पृथ्वीराज के साथ कन्नौज के जयचन्द-पृथ्वीराज के युद्ध में[३] तथा बाद में शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में भी था।[४] यह जंगल देश का रक्षक था।[५] 'तबकात-ए-नासिरी' के अनुसार दिल्ली का गोइंदराज शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा था।[६] 'जांगल' नाम के कई प्रदेश थे। 'कुरु 'जांगल' दिल्ली का प्रान्त था। सपदलक्ष प्रदेश का भी एक अन्य नाम 'जंगल' था।[७] पृथ्वीराज इन दोनों प्रदेशों का शासक था, इसलिये 'रासो' इसे किस 'जंगल' देश का रक्षक कहता है, यह स्पष्ट नहीं है, किंतु असंभव नहीं कि उसका अभिप्राय 'कुरुजंगल' से ही हो जो दिल्ली का एक प्रान्त था, और इसीलिए 'तबकात-ए-नासिरी' में उसे दिल्ली का कहा गया हो।

(७) **जयचन्द राठौर** : कहा गया है कि यह विजयपाल का पुत्र था,[८] वाराणारसी कटक के राजा मुकुंद देव ने इसे अपनी कन्या जुन्हाई ब्याह दी थी;[९] इन (जयचंद और जुन्हाई) की एक कन्या थी जिसका नाम संयोगी था;[१०] अनेक राजाओं को जीतने के अनंन्तर जयचंद ने राजसूययज्ञ और उसी अवसर पर संयोगी का स्वयंवर करने का निश्चय किया;[११] उसने पृथ्वीराज को भी उसमें सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण भेजा, किंतु पृथ्वीराज ने यह निमंत्रण अस्वीकार कर दिया; जयचंद ने इस पर पृथ्वीराज की एक स्वर्ण प्रतिमा यज्ञशाला के मुख्य द्वार पर दरवान के रूप में स्थापित करके यज्ञ करना प्रारंभ कर दिया;[१२] किसी समय इसने

---

१. अ, ६, पद्ध० २।
२. अ. ४. भुज. ५।
३. अ. १०. कवि ६, ६।
४. अ. १४ कवि. २६।
५. अ. ७ ओ० २।
६. मिनहाजुस्सिराज : तबकात-ए-नासिरी—इलियट और डाउसन, भाग २. पृ० २९५-९७।
७. दे० हरगोविंद त्रिकमजी सेठ : पाइअसद्द महाण्णव में 'जगल' शब्द।
८. अ. ३. कवि २; ६. भुज० ३।
९. अ. ३ कवि० २।
१०. अ. ३. चउ० १;
११. अ. ६. पद्ध० १।
१२. अ. ६, पद्ध० २।

हिमालय के पार सेनाएँ भेज कर आठ सुल्तानों को एक साथ शह दी थी, तिरहुत और पंडु में इसने [सैनिक] थाने स्थापित किये थे, दक्षिण में सेतुबंध तक विजय की थी। डाहल के कर्ण को मारा था, सिद्ध चालुक्य को कई वार खदेड़ा था, तिलंग और गोवाल कुंड को तोड़ा था, गुंड और जीरा को बाँध कर छोड़ा था, बैरागर से हीरे लिए थे। ग़ज़नी के शासक शहाबुद्दीन के मृत्य निसुरतखां को बंदी करके सेवा में रखा था, लंका पहुँचकर विभीषण से लड़ा था और खुरासान के अमीर को बंदी किया था।[1] चंद के साथ छद्मवेश में पृथ्वीराज के कन्नौज जाने पर जैसे ही उसे यह ज्ञात हुआ था, इसने पृथ्वीराज को घेर कर पकड़ने की आज्ञा प्रचारित की थी जिससे दोनों पक्षों में युद्ध छिड़ गया था;[2] पृथ्वीराज के प्रति संयोगी का अनुराग जानकर इसने उसे गंगा तट के एक प्रसाद में भिजवा दिया था, जहाँ से पृथ्वीराज उस को निकाल लाया था; उसको लेकर पृथ्वीराज दिल्ली की ओर चल पड़ा था, जयचंद ने उसका पीछा किया था, सोरों तक मार्ग भर युद्ध करने के अनन्तर संयोगी के हाथों में विवाह का कंकण देखकर वह कन्नौज लौट गया था, और पीछे पुरोहित भेज कर उसने सविधि उसका विवाह पृथ्वीराज से करा दिया था।[3]

जयचन्द का अभिषेक सं० १२२६ में हुआ था, यह सं० १२२६ के कमौली के दानपत्र से प्रकट है,[4] तदनन्तर सं० १२४५ तक के उसके अभिलेख, और सं० १२५३ से उसके पुत्र और उत्तराधिकारी हरिश्चन्द्र के अभिलेख मिलते हैं।[5] पृथ्वीराज का राज्यकाल सं० १२३५–सं० १२४८ है। एक दीर्घकाल तक इसलिए वह पृथ्वीराज का समकालीन था, यह निश्चित है।

विजयपाल शिलालेखादि का विजयचन्द्र है। जुन्हाई के विषय में अन्य सूत्रों से कुछ ज्ञात नहीं है। संयोगी के सम्बन्ध में भी परिस्थित लगभग यही है। जयचन्द के राजसूय यज्ञ के सम्बंध में भी अन्य सूत्र मौन हैं।

जिन राजाओं पर विजय प्राप्त करने की बात इसके सम्बंध में 'रासो' है कही गई है, उनमें से ज्ञात राजाओं के सम्बंध में विचार अलग-अलग किया

---

१. अ, ६. भुज. ३।
२. अ. खंड ६।
३. अ. खंड १०, ११, १२।
४. भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृ०. ५१।
५. वही. पृ० ५२ ६१।

गया है। किन्तु अपने पिता विजयचन्द्र के साथ उसने दिग्विजय में भाग लिया था, यह सं० १२२४ के कमौली के दानपत्र से प्रकट है, जो वाराणसी से विजयचन्द्र तथा युवराज जयचंन्द के द्वारा प्रदत्त है, क्योंकि उसमें 'भुवनदलन हेला' शब्दावली आती है।[१] विजयचन्द के तीन ही अभिलेख मिले हैं, और उनमें से यह प्रथम है। द्वितीय भी जो दानपत्र है, इसी प्रकार सं० १२२५ में विजयचन्द्र के साथ युवराज जयचन्द के द्वारा प्रदत्त है। इसलिए यह स्पष्ट है कि युवराज के रूप में जयचन्द अपने पिता विजयचंन्द्र के साथ समस्त राजकार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेता था।

किंतु पृथ्वीराज के कन्नौज जाने, उसके द्वारा जयचन्द की कन्या के अपहरण तथा पृथ्वीराज-जयचन्द संघर्ष के विषय में ऐतिहासिक सूत्र मौन हैं। श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा का कथन है कि जयचन्द एक बहुत दानी राजा था, जो उसके द्वारा प्रदत्त अनेक दान-पत्रों से प्रकट है, किन्तु उनमें से किसी में भी राजसूय यज्ञ का उल्लेख नहीं है; जयचन्द सूरि ने सं० १४६० के लगभग लिखते हुए 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'रम्भा मंजरी नाटिका' में पृथ्वीराज-जयचन्द के संघर्ष अथवा जयचन्द के राजसूय यज्ञ और संयोगी के स्वयंवर का कोई उल्लेख नहीं किया है। यद्यपि 'हम्मीर महाकाव्य' में उसने पृथ्वीराज का वृत्त देते हुए शहाबुद्दीन के साथ उसके संघर्ष की कथा पर्याप्त विस्तार के साथ दी है और 'रम्भा मंजरी नाटिका' में, जयचन्द जिसका नायिका है, जयचन्द की प्रशंसा में पन्ने रँगते हुए भी उसके किये हुए राजसूययज्ञ अथवा संयोगी-स्वयंबर का कोई उल्लेख नहीं किया है।[२] किन्तु जहाँ तक दानपत्रों में राजसूय के उल्लेख की बात है, 'रासो' के अनुसार वह पूरा ही नहीं हो पाया था, वह तो प्रारम्भ मात्र हुआ था जब पृथ्वीराज ने कन्नौज आकर उसका विध्वंस कर डाला। अतः उसकी पूर्ति के अवसर पर ब्राह्मणों के दान का कोई प्रश्न नहीं उठता है। 'हम्मीर महाकाव्य' और 'रम्भा मंजरी' को ऐतिहासिक महत्व प्रदान करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। 'हम्मीर महाकाव्य' का नायक तो हम्मीर है, और उसके एक प्रख्यात पूर्व पुरुष होने के नाते ही उसके वंश का इतिहास देते हुए उसमें पृथ्वीराज का वृत्त दिया गया है, और उस वृत्त में केवल पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के संघर्ष तथा पृथ्वीराज के अंत क कथा दी गई है। उसमें पृथ्वीराज और चंदेल परमर्दिदेव के उस संघर्ष का उल्लेख तक नहीं किया है, जो तत्कालीन इतिहास की एक महत्वपूर्ण

१. 'इपिग्राफिया इंडिका भाग ४, पृ० ११७।

२. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा: 'पथ्वीराज रासो' का निर्माण-काल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका; सं० १९८६, पृ० ५८।

घटना थी, और जिसके स्मारक में सं० १२३९ का मदनपुर का शिलालेख है,[1] तथा 'रासो' में भी जिसका उल्लेख हुआ है। 'रम्भा मंजरी' में तो लेखक ने अपने ऐतिहासिक अज्ञान को खोलकर रख दिया है। उसमें उसने जयचन्द को मल्लदेव और चन्द्रलेखा का पुत्र कहा है, और कहा है कि वह लाट के मदन वर्मा की पुत्री रम्भा से विवाह करता है।[2] किन्तु मदन वर्मा नाम का एक ही राजा उस युग का ज्ञात है और वह है चन्देल मदन वर्मा। लाट से, जो गुर्जर देश का एक प्रान्त रहा है, उसका कोई सम्बंध नहीं था। उसके कई अभिलेख प्राप्त हैं,[3] किन्तु किसी में भी उसका सम्बंध न लाट से कहा गया है, न अन्य किसी सूत्र से ही यह प्रमाणित है। इस चन्देल मदनवर्मा का देहान्त सं० १२१९ तथा सं० १२२३ के बीच किसी समय हो चुका था, क्योंकि इसका अंतिम प्राप्त अभिलेख सं० १२१९ का एक दानपत्र है।[4] उसके उत्तराधिकारी परमर्दिदेव का प्रथम प्राप्त अभिलेख सं० १२२३ का सेमरा का ताम्रपत्र है, जिसमें उसने सं० १२१९ के उक्त दानपत्र को स्वीकार किया है।[5] जयचन्द का पिता भी मल्लदेव नहीं था, उसके पिता का नाम विजयचन्द्र था जो विजयचन्द्र तथा जयचन्द के अनेक अभिलेखों से प्रकट है।[6] इसलिए स्पष्ट है कि जयचन्द की इस रचना का ऐतिहासिक महत्व कुछ भी नहीं है।

दूसरी ओर डॉ० दशरथ शर्मा का विचार है कि पृथ्वीराज से जयचन्द की कन्या के विवाह की घटना इतिहास-सम्मत ज्ञात होती है। उनका कहना है कि 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के तिलोत्तमा के चित्र पर मुग्ध होने और तदनन्तर उसके विरह में व्यथित होने की जो कथा है, वह किसी राजकुमारी से होने वाले विवाह की भूमिका मात्र है, जिसको उसके लेखक ने तिलोत्तमा का अवतार बताया होगा। वह राजकुमारी गंगातटवर्ती किसी स्थान की थी, यह उसके अंतिम प्राप्त सर्ग के ७८ वें

---

१. भांडारकरः इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृ० ५८।

२. डॉ० ए० एन० उपाध्ये: 'जयचंद्र ऐंड हिज रंभामंजरी', जर्नल ऑफ यू. पी. हिस्टॉरिकल सोसाइटी, भाग, १६, पृ० ९०।

३. भांडारकरः इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृ० ३५-४७।

४. वही, पृ० ४७।

५. वही, पृ० ४९।

६. वही, पृ० ५०,५१।

त्रुटित श्लोक के 'नाक नदी तट स्थितः' से प्रकट है। इसलिए उसमें 'रासो' की संयोगी अथवा 'सुर्जन चरित' की कान्तिमती का चरित्र और पृथ्वीराजसे उसके विवाह की कथा आई हो तो आश्चर्य न होगा।[१] फलतः प्राप्त साक्ष्यों से 'रासो' की पृथ्वीराज और जयचन्द के संघर्ष की कथा का कोई विरोध नहीं दिखायी पड़ता है।

(८) **निर्भय और लखन पँवार:** कहा गया है कि निभय पँवार धारा का शासक था और कैंवास-भीम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ता हुआ मारा गया,[२] निभय के अनन्तर लखन वहाँ का शासक हुआ, जो पृथ्वीराज के साथ कन्नौज गया था और वहाँ के युद्ध में सम्मिलित था और उसके अनन्तर पृथ्वीराज के साथ दिल्ली लौटा था।[३]

धारा का शासक पृथ्वीराज के समय में महाकुमार हरिश्चन्द्र देव परमार था, जिसका एक अभिलेख प्राप्त है जो सं० १२३५ का है।[४] इसके पूर्व महाकुमार लक्ष्मी वर्म देव वहाँ का शासक था जिसका एक अभिलेख प्राप्त जो सन् १२०० का है।[५] और महाकुमार हरिश्चन्द्र देव के पश्चात् वहाँ का शासक महाकुमार उदय वर्म देव हुआ, जिसका एक अभिलेख प्राप्त है जो सं० १२५६ का है।[६] अतः यह प्रकट है कि निभय और लखन पँवार नाम का कोई शासक पृथ्वीराज के समय में धारा में नहीं हुआ।

(९) **नाहर:** परिहार कहा गया है कि यह पृथ्वीराज का एक सामंत था जो कैंवास-भीम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा था,[७] यह मदनसिंह परिहार का पुत्र था,[८] यह पृथ्वीराज जयचन्द के कन्नौज के युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से सम्मिलित था,[९] यह मण्डल का परिहार था और पृथ्वीराज-शहाब उद्दीन के अन्तिम युद्ध में भी था, और उसमें लड़ता हुआ मारा गया था।[१०]

---

१. वही।
२. अ. ५, भुजं० ११।
३. अ. ८. भुजं १, १०. कवि० ६; १२. पद्ध० ३।
४. भांडारकर इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ५७।
५. वही, पृ० ४०।
६. वही, पृ० ६३।
७. अ० ५. भुजं० ५।
८. अ० ८. भुजं० १।
९. अ० ८. भुजं० १, १२. पद्ध० ३।
१०. अ० १७. कवि० ६, कवि० ७।

एक नाग भट प्रतिहार का शिलालेख बुचकला का सं० ८७२ का है।[७०] उसी का उल्लेख सं० ८९३ के प्रतिहार भोजदेव (प्रथम) के बरह वाले ताम्रपत्र[७१] तथा पुनः सं० ९०० के प्रतिहार भोजदेव (प्रथम) के दौलतपुरा के ताम्रपत्र में उसके पितामह के रूप में हुआ है।[७२] किंतु इस नागभट का उल्लेख 'रासो' में हुआ नहीं हो सकता है, क्यों कि नागभट पृथ्वीराज के समय में ही ३५० वर्ष प्राचीन व्यक्ति हो चुका था, जब कि 'रासो' की रचना जैसा हम आगे देखेंगे पृथ्वीराज के भी काफी बाद हुई होगी।

(१०) **पज्जूनराय कूरंभ :** कहा गया है कि यह पृथ्वीराज का एक सामंत था और कैंवास-भीम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा था;[७४] इससे पंगुली देश काँपता था;[७४] यह कन्नौज के पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध में भी पृथ्वीराज की ओर से लड़ा था और उसी में मारा गया था।[७५]

इसके सम्बन्ध में निश्चित ऐतिहासिक साक्ष्य का अभाव है। आमेर राज्य की वंशावलियों के अनुसार पज्जून वज्रदामा से तेरह पीढ़ियाँ बाद हुआ और वज्रदामा का एक शिलालेख सं० १०३४ का है; यदि प्रत्येक पीढ़ी का औसत काल बीस वर्षों का लिया जावे तो पज्जून का समय सं० १२९४ के लगभग पड़ना चाहिए, ऐसा प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्रीगौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा का विचार है।[७६] इसके विरुद्ध श्रीहरिचरणसिंह

---

७०. भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ५।

७१. वही प० ५।

७२. वही प० ६।

७३. अ० ५ भुजं ५. रसा० १०

७४. अ० ७. जोट० २।

७५. अ० ८. भुजं १, १० कवि० ५, कवि० ६, कवि० ९।

७६. गौरी शङ्कर हीराचन्द ओझा : 'आनन्द विक्रम संवत् की कल्पना' नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० १९७७, पृ० ४३२।

चौहान का कहना है कि उसी वंशावली के अनुसार वज्रदामा से सात पीढ़ी बाद सोढदेव का समय सं० ११२५ है, और वज्रदामा के समय से ९१ वर्ष बाद पड़ता है, इसलिये प्रत्येक पीढ़ी का औसत समय सोढदेव तक १३ वर्ष ही होता है। बाद की पीढ़ियों के लिए १६-१७ वर्षों का औसत माना जावे तो पज्जून का समय पृथ्वीराज के समय के साथ ही पड़ता है।[७७] इन वंशावलियों पर विशेष विश्वास करना बहुत उचित नहीं माना जा सकता है, किंतु यह स्पष्ट है कि ये 'रासो' में दिये हुए पज्जून के समय का विरोध नहीं करती हैं। पज्जून के सम्बन्ध में 'रासो' में दी हुई शेष बातों के सम्बन्ध में कोई अन्य साक्ष्य प्राप्त नहीं हैं।

(११) पृथ्वी राजः पृथ्वीराज के जीवन की जिन घटनाओं का सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों से हैं, उनके सम्बन्ध में उन व्यक्तियों के शीर्षकों में विचार किया जा रहा है। यहाँ केवल उनकी वंशावली तथा उनके जीवन की तिथियों पर विचार किया जा रहा है।

एक स्थान पर कहा गया है कि चहुवान वंश के मूल पुरुष की उत्पत्ति ब्राह्मण के यज्ञ से हुई।[७८] अन्यत्र कहा भी गया है चहुवान वंश ने ब्राह्मण के [यज्ञ] की वेदिका से जन्म लिया और उसे श्रोत्रिय [ब्राह्मण] सामंत ने उत्पन्न किया। यह उल्लेख सं० १२२६ के सोमेश्वर के बिजोलिया के शिलालेख से यथेष्ट साम्य रखता है जिसमें कहा गया है कि इस वंश का प्रथम पुरुष वत्सगोत्र का ब्राह्मण सामंत नाम का था।[८०] सं० १३१६ के सुंधा पर्वत के शिलालेख में भी मूल पुरुष चाहमान की उत्पत्ति वत्स गोत्र में बतायी गई है।[८१] सं० १३७७ के अचलगढ़ के

---

७७. श्रीहरिचरणसिंह चौहान : आमेर के कछवाहे और राव पजून तथा राव कील्हण' : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० १९८६, पृ० ६७।

७८. क्र. २. पद्धु० १।

७९ क्र. १४. कवि० ६।

८०. भांडारकर : 'इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया' पृ० ५१, तथा अक्षय कीर्ति व्यास: 'बिझोली रॉक इन्स्क्रप्सन ऑफ चाहमान सोमेश्वर इंपिग्राफि या इन्डिका जिल्द २६ पृ० ८४।

८१. वही, पृ० ८०।

शिलालेख में कहा गया है कि जब सूर्य और चंद्र वंश मिट गये, वत्स ऋषि ने क्षत्रियों का एक नया वंश (चाहमान वंश) उत्पन्न किया।[८२] किंतु कुछ काव्यग्रंथों में चाहमानों का सूर्यवंशी इक्ष्वाकु से संबंध जोड़ा गया है : ये काव्य हैं : (१) सं० १२१० में सोमेश्वर लिखित और शिलाओं पर उत्कीर्ण एक राज प्रशस्ति काव्य, (२) जयानक लिखित 'पृथ्वीराज विजय' तथा (३) सं० १४६० के लगभग जयचंद्र सूरि द्वारा लिखित 'हम्मीर महाकाव्य' और इन्हीं के आधार पर गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने चहुमानों को सूर्यवंशी माना है।[८३] किंतु नवीन राजकुलों को पौराणिक राजकुलों से संबद्ध करने की चेष्टा आश्रित कवियों ने सदैव की है, वही बात इन काव्यों के उल्लेखों में भी दिखायी पड़ती है। अतः इस प्रकार के विषयों में राजकीय अभिलेखों और काव्यों में विरोध उपस्थित होने पर अभिलेखों का प्रमाण ही मान्य होना चाहिए और यह स्पष्ट है कि 'रासो' का उल्लेख इस विषय में राजकीय उल्लेखों से पूर्ण साम्य रखता है।

इसके अनंतर 'रासो' में दी हुई वंशावली इस प्रकार है : मानिक्कराय—बीसल—सारंग—आनल—जैसिंहदेव—आनंद—सोमेश्वर—पृथ्वीराज।[८४] अन्यत्र भी उसमें मानिक्कराय को इस वंश का मूल पुरुष कहा गया है।[८५] इस चहुवान वंश की सबसे पूर्ण वंशावली सोमेश्वर के सं० १२२६ के बिजोलिया के शिलालेख में मिलती है।[८६] उपर्युक्त सामंत ब्राह्मण के अनंतर जो इस प्रकार है :

पूर्णतल्ल—जयराज—विग्रह—चंद्र—गोपेन्द्रक—दुर्लभ—गुवाक—शशिनृप—गुवाक—चंदन—वप्पयराज—विंध्यनृपति—सिंहराज—विग्रह—दुर्लभ—गुंडू—वाक्पति तथा वीर्यराम—चामुंड—सिंघट—दूसल तथा वीसल—पृथ्वीराज—अजयदेव—अर्णोराज—विग्रहराज, पृथ्वीराज (जो अर्णोराज का भतीजा था) तथा सोमेश्वर।

---

८२. भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया,' पृ० ६५।

८३. गौरीशंकर हीराचंद ओझा : 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० १९८६, पृ० २९।

८४. अ. २. पद्ध० १, पद्ध० २, दो० १, पद्ध० ७, दो० ६।

८५. अ. ७, श्लो० २।

८६. भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया, पृ० ५१।

इससे पूर्व सं० १०३० के हरस के शिलालेख में गोविन्दराज ने, जिसे उपर्युक्त बिजोलिया के शिलालेख में गुंडू कहा गया है, अपनी वंशावली दी है,[८७] जो इस प्रकार है —

गुवाक—चंद्रराज—गुवाक—चंदन—वाक्पतिराज—सिंहराज तथा वत्सराज—सिंहराज के पुत्र विग्रह राज, दुर्लभराज, चंद्रराज तथा गोविंदराज। उपर्युक्त सोमेश्वर के बिजोलिया के शिलालेख से इस शिलालेख में दी हुई वंशावली में एक अंतर तो यह है कि इसमें गुवाक के पूर्वजों के नाम नहीं दिए गए हैं, दूसरा अंतर यह है कि बिजोलिया के अभिलेख से इसमें विंध्यनृपति का नाम वप्पयराज (वाक् पतिराज) और सिंहराज के बीच में कम है, और तीसरा अंतर यह है कि इसमें विग्रह, दुर्लभ और गोविंदराज को भाई-भाई कहा गया है जब कि बिजोलिया के अभिलेख में भी उन्हें उत्तरोत्तर नृप मात्र कहा गया है। जहाँ तक तीसरे अंतर का प्रश्न है, उसके विषय में स्वतः गोविन्दराज से बढ़ कर प्रमाण दूसरा नहीं हो सकता, इसलिए उसके सम्बंध में गोविंदराज का हरस का शिलालेख ही मान्य है। विंध्यनृपति सम्बन्धी अंतर के बारे में भी गोविंदराज का सोमेश्वर के लगभग २०० वर्ष पूर्व का साक्ष्य अधिक मान्य प्रतीत होता है। यदि विंध्यनृपति सिंहराज के पिता और इसलिए गोविन्दराज के पितामह होते, तो उनका नाम कदापि उस हरस के अभि लेखमें उल्लिखित होने से रह न जाता, जहाँ तक प्रथम अंतर का प्रश्न है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि बिजोलिया के शिलालेख वाले नाम कल्पित हैं, किंतु शिलालेखादि की कोटिका अन्य और भी साक्ष्य उनके समर्थन के लिए प्राप्त नहीं हैं। उपर्युक्त के अतिरिक्त पृथ्वीराज के सं० १२३६ मदनपुर के शिलालेख में अर्णोराज—सोमेश्वर—पृथ्वीराज परम्परा मिलती है। अतः गुवाक (प्रथम) से लेकर पृथ्वीराज की पूर्व पीढ़ियाँ सत्रह होती हैं। 'रासो' में पृथ्वीराज के पूर्व, जैसा हमने ऊपर देखा है, केवल सात पीढ़िया ही दी हुई हैं। इन सात पीढ़ियों में भी केवल तीन नाम वीसल, आनल तथा सोमेश्वर के ऐसे हैं जो निर्णीत वंशावली में आते हैं, चार नाम सर्वथा कल्पित हैं। इससे ज्ञात होता है कि 'रासो' के लेखक को पृथ्वीराज के पूर्वजों के विषय का ज्ञान किसी प्रामाणिक सूत्र से प्राप्त नहीं था। वह कदाचित् सुनी-सुनाई बातों पर आधारित था।

---

८७. भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृ० १४।

जहाँ तक पृथ्वीराज के जीवन की तिथियों की बात है, निम्नलिखित तिथियाँ 'रासो' में आती हैं।

(अ) सं० १११४-१५ में पृथ्वीराज का जन्म हुआ—यह तिथि नहीं दी हुई है किंतु सं० ११५१ के चैत्र मास में वह ३६ वर्ष ६ मास का कहा गया है।[८८]

(आ) सं० ११३८ में खट्टूपुर का धन निकाला गया।[८९]

(इ) सं० ११३८ मार्गशीर्ष शुक्र ५ गुरुवार को पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य मिला।[९०]

(ई) सं० ११४८ में भोरा भीम ने शिवपुरी को जलाया।[९१]

(उ) सं० ११५१ चैत्र तृतीया रविवार को पृथ्वीराज ने कन्नौज के लिए प्रयाण किया।[९२]

(ऊ) सं० ११५४ में पृथ्वीराज को पराजित करने के अनंतर दिल्ली का राज्य शहाबुद्दीन को मिला—यह तिथि नहीं दी हुई है किंतु सं० ११३८ में जब अनंगपाल ने दिल्ली का राज्य पृथ्वीराज को दिया है, यह भविष्य वाणी हुई है कि १६ वर्ष बाद तुर्क दिल्ली का शासक होगा।[९३]

पृथ्वीराज के जीवन की तीन तिथियाँ निश्चित हैं:

(क) राज्यारोहण तिथि: सोमेश्वर के समय का अंतिम अभिलेख भाद्रपद सं० १२३४ का अनवल्दा का सती-स्तंभ का शिलालेख है।[९४] और पृथ्वीराज के समय के प्रथम अभिलेख फलोधी, तथा लोहारी के हैं जो सं० १२३६

---

८८. अ. ६. कवि० २; ३।
८९. अ. २. दो० १६।
९०. अ. २. कवि० ७; दो० २२।
९१. अ. ४. कवि० १।
९२. अ. ८. दो० १।
९३. अ. २. कवि० ६।
९४. भांडारकर: इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया, पृ०३६।

आषाढ़ के हैं। इसलिए भाद्र सं० १२३४ तथा आषाढ़ सं० १२३६ के बीच किसी समय सोमेश्वर की मृत्यु हुई और पृथ्वीराज अजमेर का शासक हुआ।

(ख) चंदेल परमर्दि पर विजय की तिथि : मदनपुर का सं० १२३६ का शिलालेख इसी विषय का स्मारक है।[९५]

(ग) देहांत तिथि : पृथ्वीराज के जीवन-काल का अंतिम अभिलेख सं० १२४५ का वाजट मूर्ति का शिलालेख है,[९६] और उसके उत्तराधिकारी हरिराज के समय का प्रथम अभिलेख सं० १२५१ का टंटोटी का शिलालेख है।[९७] इसलिए निश्चित है कि पृथ्वीराज का देहांत सं० १२४५ और सं० १२५१ के बीच किसी समय हुआ। मुस्लिम इतिहासकार मिनहाजुस्सिराज (सं० १३२६ वि०) के अनुसार वह ५८८ हिजरी (सं० १२४८-४९) में पराजित होने के अनंतर शहाबुद्दीन के द्वारा मरवा डाला गया।[९८] 'पुरातन प्रबंध संग्रह' में संकलित तथा विक्रमीय १५ वीं शदी में लिखे गए 'पृथ्वीराज प्रबंध' में सं० १२४६ की तिथि दी हुई है,[९९] किन्तु उक्त अन्य देहांत तिथि एक इतिहास-लेखक की दी हुई है, अतः अधिक मान्य है।

पृथ्वीराज के जीवन-काल के जो अन्य अभिलेख मिले हैं वे भी सं० १२३६ तथा सं० १२४५ के बीच के हैं।[१००] इस प्रकार हम देखते हैं कि पृथ्वीराज के प्रौढ़ जीवन संबंधित समस्त तिथियाँ विक्रमीय तेरहवीं शती की हैं। किंतु ऊपर 'रासो' से दी हुई समस्त तिथियाँ विक्रमीय बारहवीं शती की हैं। इसलिए यह प्रकट है कि 'रासो' की तिथियाँ नितान्त कल्पित हैं।

---

९५. वही, पृ० ५८।

९६. वही, पृ० ६१।

९७. वही, पृ० ६२।

९८. मिनहाजुस्सिराज : तबकात-ए-नासिरी—इलियट और डाउसन, भाग २, पृ० २९६-९७।

९९. पुरातन प्रबन्ध संग्रह'—मुनिजिन विजय द्वारा सम्पादित पृ० ८७।

१००. भांडारकर : 'इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया' पृ० ५८-६१।

'रासो' की तिथियों को शुद्ध प्रमाणित करने के लिए विक्रमीय से ९१ वर्ष पिछड़े हुए 'अनंद' नामक संवत् की कल्पना की गई है। [१०१] किंतु इस कल्पना से भी अंतर का समाधान नहीं होता है। ९१ वर्ष जोड़ने पर पृथ्वीराज के दिल्ली राज्याभिषेक की तिथि सं० १२२९ तथा देहांत की तिथि सं० १२४५ होती है। किंतु 'रासो' में यह कहा गया है कि पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य उस समय मिला जब वह अजमेर राजा का था, [१०२] और अजमेर का राजा वह सं० १२३४ और सं० १२३६ के बीच किसी समय हुआ, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, इसलिए दिल्ली का राज्य उसे सं० १२३६ के बाद मिला होगा यदि दिल्ली दान के सम्बन्ध में 'रासो' के कथनों को माना जावे। देहांत-तिथि तो स्पष्ट ही अशुद्ध है, राज 'मिनहाजुस्सिराज' की सं १२४८-४९ की पृथ्वीराज की देहांत तिथि को न मानने का कोई कारण नहीं है। वस्तुतः 'रासो' की तिथियों और ऐतिहासिक प्रमाणों पर निश्चित तिथियों में एक-सा अंतर है ही नहीं; इसलिए किसी भी एक कालावधि के जोड़ने-घटाने से उस विषमता को दूर नहीं किया जा सकता है।

(१२) भीम चौलुक्यः—गुर्जर नरेश कहा गया है कि इसने सं० ११.८ के चैत्र शुक्ल में शिवपुरी को जला दिया; यह आबू के सलष पँवार की कन्या इंछिनी से विवाह करना चाहता था जिसके लिए सलष तैयार नहीं था, इसलिए इसने उस पर आक्रमण कर दिया, सलष ने पृथ्वीराज के पास इस आक्रमण से उसकी रक्षा करने के लिए संदेश भेजा, तो उसने कैंवास को साढ़े पाँच हजार सेना के साथ भीम का सामना करने के लिए भेजा, नागौर के पास सोभत्ती में युद्ध हुआ भीम पराजित हुआ और सलष ने अपनी कन्या इच्छिनी का विवाह पृथ्वीराज से, कर दिया। [१०३]

इस भीम चौलुक्य का प्रथम प्राप्त अभिलेख सं० १२३५ का किराडू का है, [१०४] और अंतिम प्राप्त अभिलेख सं० १२८७ का है। [१०५] इसलिए यह स्पष्ट है कि वह पृथ्वीराज के (सं० १२३६-१२४९) का समकालीन था। दोनों में वैमनस्य के प्रमाण भी मिलते हैं। 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के चौलुक्य को शत्रु

१०१. मोहनलाल विष्णु लाल पंड्या, सम्पादक 'पृथ्वीराज रासो' पृ० १३९।
१०२. अ. २. साट० ४।
१०३. अ. खंड ४, और खण्ड ९,११. कवि० २३ तथा पद्ध० १४, कवि० १४।
१०४. भांडारकर 'इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया' पृ० ५६।
१०५. वही, पृ० ७०।

समझने का उल्लेख हुआ है।[१०६] कहा गया है कि जैसे शुंभ तथा निशुंभ नष्ट हुए थे, उसी प्रकार लक्ष्मी के उद्देश्य से लड़कर आपके शत्रु स्वयं नष्ट हो जाएँगे, मंत्रीवर यह कह ही रहा था कि प्रतिहार ने आकर निवेदन किया कि गुर्जर मंडल से पत्र लिए हुए एक दूत आया है। (पृथ्वीराज विजय सर्ग ११३६) जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा रचित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में पृथ्वीराज और भीम चौलुक्य के सेनापति जगदेव प्रतिहार के बीच कठिनाई से हो पाई एक संधि का उल्लेख हुआ है।[१०७] डॉ० दशरथ शर्मा ने चरलू (बीकानेर) में मिले हुए शिलालेखों का उल्लेख किया है, जिनमें आहड़ और अंबराक नामक दो चौहान सामंतों का सं० १२४१ के नागपुर (नागौर) के किसी युद्ध में मारे जाने का उल्लेख है। इसलिए दोनों में कोई युद्ध हुआ हो तो असम्भव नहीं है। सलष और इंछिनी के कारण कथित युद्ध के सम्बन्ध में यथास्थान आगे विचार किया जाएगा।

(१३) मुकुन्द देव : कहा गया है कि यह सोमवंशी राजा था और वाराणसी कटक नगर का स्वामी था; इसने दिग्विजय के लिए निकले हुए विजयपाल का स्वागत किया और उसके पुत्र युवराज जयचंद को अपनी कन्या जुन्हाई ब्याह दी।[१०८]

कटक और उत्कल का इस युग का इतिहास बहुत कुछ अंधकार में है। डॉ० फ्लीट ने अपने एक लेख में पुरी के मंदिर की तालपत्र पर लिखित एक पञ्जी का, जो ओड़ीसा के राजवंश का विवरण देती है, उल्लेख किया है जिसमें कहा गया है ओड़ीसा पर केसरी वंश के शोभनदेव के समय में मुसलमानों ने आक्रमण किया और उस वंश के चंद्रदेव का वध कर दिया।[१०९] यदि इस पञ्जी पर विश्वास किया जाए, तो विजयचंद्र के समय में कटक पर केसरी वंशीय राजाओं का शासन हो सकता है और केशरी वंशीय राजा सोमवंशी थे, यह रत्नगिरि-जाजपुर [कटक] में मिले हुए एक शासन-पत्र से प्रमाणित है। इस शासन-पत्र में प्रारम्भ में चंद्रमा की प्रशंसा करके कहा गया है कि उसके कुल में केसरी वंश का प्रथम पुरुष जनमेजय हुआ।[११०]

---

१०६. 'पृथ्वीराज विजय' : एकादश सर्ग।

१०७. अगरचन्द नाहटा : जगदेव और पृथ्वीराज की सन्धि' : हिंन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ९८।

१०८. अ० १, कवि० ३।

१०९. इपिग्राफिका इंडिका, भाग ३, पृ० ३२३।

११०. नारायण त्रिपाठी, 'एन इंकम्प्लीट चार्टर ऑफ ए सोमवंशी किंग फाउंड ऐट रत्नगिरि', जर्नल ऑफ बिहार ऐंड ओडीसा रिसर्च सोसाइटी, १९३०, पृ० २०६।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने कहा है कि इस समय कटक पर गंग वंशियों का का शासन था । किन्तु गंग वंशीय अनंत वर्ष चोल गंग देव ने जो शकाब्द (विक्रमांय ११३४) में राज्याभिषिक्त हुआ[११०] सं० ११७५ के ४६ दानपत्र के अनुसार पहले च्युत (पराजित) उत्कल पति को उसके राज्यासन पर बिठाया था ।[१११] चोल गंग के उत्तराधिकारी कामार्णव का अभिषेक शकाब्द १०६४ (विक्रमीय ११६६) में हुआ ।[११२] विजयचन्द्र के पिता गोविंदचंद्र का अंतिम प्राप्त अभिलेख सं० १२११ का है । [११३] और विजयचन्द्र का प्रथम प्राप्त अभिलेख सं० १२२४ का है । [११४] इसलिए विजयचन्द्र का अभिषेक इन दोनों तिथियों के बीच कभी हुआ होगा । चोल गंग के जीवन काल तक उत्कल का उक्त राजवंश उत्कल के सिंहासन पर रहा ही होगा; यदि और भी कुछ बाद विजयचन्द्र के शासनकाल तक वह वहाँ बना रहा हो, तो आश्चर्य न होगा । ऊपर हम देख ही चुके हैं कि पज्झी के साक्ष्य से भी यही ज्ञात होता है ।

(१४) समरसिंह रावल और सामंतसिंह : कहा गया है कि यह पृथ्वीराज की भगिनी पृथा का पति और चित्तौर का शासक था, शहाबुद्दीन के अंतिम युद्ध के समय दिल्ली आया था, [११५] यह पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन के उस अंतिम युद्ध में सम्मिलित हुआ था, और लड़ता हुआ मारा गया था । [११६] 'रासो' में यद्यपि सामान्यतः इसे समरसिंह कहा गया है, किंतु कहीं-कहीं सामंतसिंह और सामंत भी कहा गया है ।[११७]

मेवाड़ के महाराजा सामंत सिंहदेव के अभिलेख सं० १२२८ से ० १२५८ तक प्राप्त होते हैं; [११८] और महाराज कुल (महारावल) समरसिंह के सं० १३३० से सं० १३५८ तक मिलते हैं । [११९] इसलिए पृथ्वीराज का समकालीन सामंत सिंह

---

११०. भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया' पृ० १४८ ।
१११. इंडियन एंटीक्वरी, भाग १८, ५० १६५-१७२ ।
११२. भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृ० १५० ।
११३. वही, पृ० ४४ ।
११४. वही, पृ० ५० ।
११५. अ. १४. कवि० ६, तथा-परवर्ती अनेक छंद ।
११६. अ. १५. कवि० १८, १५, कवि. २, कवि०२, कवि० ६, १७, कवि०६, त्रोट०५।
११७. अ. १४. कवि० ७. कवि० १६, १६, कवि० २ ।
११८. भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृ० ५३-६४ ।
११९. वही, पृ० ८२-६२ ।

जहाँ तक इस रूप की रचना-तिथि का प्रश्न है। हम ऊपर देख चुके हैं कि इसमें महाराष्ट्रपति कन्हराय (सं० १३०४- १३१७) तथा रावल समरसी (सं० १३३०-१३५८) के उल्लेख आए हैं: इनमें से एक को पृथ्वीराज-जयचंद के युद्ध में और दूसरे को पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन के अंतिम युद्ध में सम्मिलित किया गया है। ये उल्लेख कम से कम इतने बाद तो अवश्य ही किये गए होंगे जब पाठकों को पृथ्वीराज और इनके काल-वैषम्य की कोई धारणा शेष न रही होगी। यदि इस विस्मृति के लिए ६५-७० वर्षों का समय भी आवश्य मानें, तो लघु पाठ की रचना-तिथि सं० १४२८ के लगभग ठहरती है। इसलिए मेरा विश्वास है कि 'रासो' के मूलरूप से हम अब भी दूर हैं और उसको प्राप्त या पुनर्निर्मित करने की चेष्टा हमें करनी चाहिए।

---

१३०. वही।

पुरातन प्रबन्ध-संग्रह, चंदबरदाई और जल्ह का समय

बीस वर्ष हुए मुनि जिनविजय जी ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह'[1] नाम से कतिपय ऐसे प्रबन्धों का एक संकलन प्रकाशित किया जिनका सम्बन्ध मेरुतुङ्ग के 'प्रबंध चिंतामणि' के प्रबन्धों से था। इसमें उन्होंने पृथ्वीराज तथा जयचंद से सम्बद्ध प्रबन्ध भी दिए। इन दो प्रबन्धों में चार ऐसे छंद उद्धृत हुए हैं जिनमें से तीन नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में भी पाये जाते हैं। इसलिये इन प्रबन्धों से चंद तथा 'पृथ्वीराज रासो' पर एक नया और महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है, जिसके लिए हमें मुनि जी का उपकृत होना चाहिए।

इतना ही नहीं, मुनि जी ने 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य में 'संग्रह के कुछ महत्व के प्रबन्ध' शीर्षक देते हुए इन दो प्रबन्धों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विचार भी किया है। उनका कथन है कि "इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में जो ३–४ प्राकृत-भाषा-पद्य उद्धृत किये हुए मिलते हैं, उनका पता हमने उक्त रासो में लगाया है, और इन चार पद्यों में तीन पद्य, यद्यपि विकृत रूप में लेकिन शब्दशः, उसमें हमें मिल गए हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि चंद कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उनका सम्मानित एवं राजकवि था। उसीने पृथ्वीराज के कीर्तिकलाप का वर्णन करने के लिए देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो 'पृथ्वीराज रासो' के नाम से प्रसिद्ध हुई।"[2] मुनि जी के इस निष्कर्ष के आधार क्या हैं, यह उन्होंने स्पष्ट रूप से नहीं कहा है, किंतु इतना लिखने के बाद ही उन्होंने उक्त तीन छंदों के पाठ प्राप्त संग्रहों तथा नागरी प्रचारिणी सभा के 'पृथ्वीराज रासो' के संस्करण से तुलना के लिए देते

---

१. प्रकाशक : सिंघी जैन विद्यापीठ, बालीगंज, कलकत्ता, १९३६ ई०।

२. प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ८-९।

हुए प्रबन्धों के पाठ की भाषा-विषयक प्राचीनता पर जो बल दिया है[३] उससे अनुमान यही होता है कि उनके कथन का मुख्य आधार यही है। हो सकता है कि उनके आधार कुछ अन्य भी हों, किन्तु उल्लेख न होने से उनपर विचार करना संभव नहीं है।

यहाँ प्रश्न यह हो सकता है कि भाषा के स्वरूप का साक्ष्य क्या इतना निश्चयात्मक है? भाषा का जो स्वरूप प्रबन्धों के इस पाठ में मिलता है वह विद्यापति की 'कीत्तिलता' तक अनेकानेक अन्य रचनाओं में भी मिलता है, इसलिए यदि उसी के आधार पर निष्कर्ष निकालना हो तो कदाचित् हम इतना ही कह सकते हैं कि भाषा की दृष्टि से इन छंदों की रचना १८०० ई० के पूर्व की होनी चाहिए। केवल इतने साक्ष्य के आधार पर यह परिणाम निकालना कि चंद "दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था" तर्कसम्मत नहीं लगता है। यदि रचना का कम से कम इतना अंश अपने मूल रूप में उपलब्ध होता कि हम ऐतिहासिक दृष्टि से भी उसकी परीक्षा कर सकते, तो हम भाषा की सहायता लेते हुए इस सम्बन्ध में किसी अंश तक निश्चयात्मक रूप से कह सकते थे। केवल इन दो-चार छंदों के बल पर इस प्रकार का परिणाम हम नहीं निकाल सकते हैं।

वस्तुतः मुनि जी ने यदि ध्यान से देखा होता, तो उन्हें ज्ञात होता कि जो चार छंद उक्त प्रबन्धों में चंद के कहकर उद्धृत किये गए हैं, उनमें से दो चंद के नहीं जल्ह के हैं। ये दो छंद निम्नांकित हैं —

१. त्रिण्हि लक्ख तुषार सबल पाखरीअइं जसु हय।
चऊदसइं मयमत दंति गज्जंति महामय॥
वीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर॥
ल्हूसडु अरु बलुयान संख कु जाणइ तांहं पर॥
छत्तीस लक्ख नराहिवइ विहि विनडिओ हो किम भयउ।
जइचंद न जाणउ जल्हु कइ गयउ कि मुउ कि घरि गयउ॥

२. जइचंदु चक्कवइ देव तुह दुसह पयाणउ।
धरणि धसवि उद्धसइ पडइ रायह भंगाणओं॥

३. प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ६, १०।

सेसु मणिहिं संकियउ मुक्कु हय खरि सिरि खंडिओ ।
तुट्टओ सो हरधवलु धूलि जसु चिय तणि मंडिओ ।।
उच्छलीउ रेणु जसग्गि गय सुकवि ब (ज) ल्ह सच्चउं चवइ ।
वग्ग इंदु बिंदु भुय जुअलि सहस नयण किण परि मिलइ ।।

इनमें से ऊपर उद्धृत प्रथम छंद नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में (पृ० २५०२ पर) अवश्य मिलता है, किंतु यह दर्शनीय है कि इस छंद को 'रासो' में स्थान देने के लिये प्रक्षेपकर्ता को छंद की अंतिम पंक्ति से 'जल्हु' का नाम निकाल कर उसमें 'चंद' का नाम रखना पड़ा और तभी यह संभव हो सका । वहाँ रासो में उसका पाठ है :

जैचंद राय कवि चंद बहि उदधि बुभि कै घर लियौ

इस प्रसंग में इतना और जान लेने योग्य है कि—जहाँ तक मुझे ज्ञात है—सभा के इस बृहद पाठ के अतिरिक्त रासो के अन्य किसी पाठ की प्रतियों में ऊपर उद्धृत प्रथम छंद नहीं मिलता, है और ऊपर उद्धृत द्वितीय छंद तो किसी भी पाठ की प्रतियों में नहीं मिलता है । फलतः ये दो छंद निश्चित रूप से जल्ह के हैं, चंद के नहीं हैं, और चंद की रचना का स्वरूप अथवा उसका समय निर्धारित करते समय इनका आधार नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

किंतु प्रबन्ध-लेखक इन दो छंदों को 'जयचंद प्रबन्ध' में उद्धृत करके ही संतोष नहीं करता है । वह ऊपर उद्धृत प्रथम छंद के पूर्व कहता है, 'तदनु चंद बलिद्द भट्टेन, श्री जैतचंद प्रत्युक्तम्' और इसी प्रकार वह ऊपर उद्धृत द्वितीय छंद के पूर्व करता है 'पत्तनागतं वर्यद्वयेनोक्तम् । तेनैव पूर्वमुक्तम्' । इससे यह ज्ञात होगा कि प्रबन्ध-लेखक विश्वसनीय नहीं है, और ऐसे प्रबन्धों के अंतर्साक्ष्य के आधार पर पृथ्वीराज तथा चंद के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रकार के परिणाम निकालना किसी प्रकार भी युक्तिसंगत न होगा ।

फिर भी इन प्रबन्धों का बहिर्साक्ष्य महत्वपूर्ण है और उसके आधार पर चंद तथा जल्ह के समय पर कुछ विचार किया जा सकता है । नीचे हम उसी के आधार पर चंद तथा जल्ह के समय के सम्बन्ध में विचार करेंगे ।

'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचंद प्रबन्ध' नाम के ऐसे दो प्रबन्ध हैं जिनमें उल्लिखित चार छंद मिलते हैं: ऊपर उद्धृत दो छंद तो 'जयचंद प्रवन्ध' में हैं, और शेष दो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में। इनमें से 'पृथ्वीराज प्रवन्ध' तो दो प्रबन्ध-संग्रहों में मिलता है, जिन्हें मुनि जी ने 'पी' तथा 'बी' कहा है, और 'जयचंद प्रबन्ध' केवल 'पी' में मिलता है। इन दोनों प्रवन्ध-संग्रहों की एक-एक प्रतियाँ ही मिली हैं, अतः उन्हीं को लेकर हमें आगे बढ़ना होगा। नीचे दी हुई सूचनाएँ 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रास्ताविक वक्तव्य से हैं।

'पी' संग्रह में ४० प्रबन्ध हैं और 'बी' संग्रह में ७१। किंतु 'बी' प्रारंभ में तथा बीच-बीच में भी खंडित है, इसलिये उसके १७ प्रबन्ध अनुपलब्ध हैं, केवल ५४ प्रबन्ध प्राप्त हैं। 'पी' इस प्रकार खंडित नहीं है, इसलिये उसके समस्त प्रबंध प्राप्त हैं। 'पी' के उपर्युक्त ४० तथा 'बी' के उपर्युक्त ५४ प्राप्त प्रबन्धों में से अनेक प्रबन्धों के नाम ऐसे हैं जो समान हैं। उन समस्त प्रबन्धों का पाठ भी दोनों में समान है, यह कहना उपर्युक्त प्रतियों को देखे बिना संभव नहीं है। फिर भी 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संकलित निम्नलिखित आठ प्रबन्ध ऐसे हैं जो दोनों में समान पाठ के साथ पाये जाते हैं [यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में केवल वे ही प्रबन्ध संकलित हुए हैं जिनका सम्बन्ध मेरुतुङ्ग के 'प्रबन्ध चिंतामणि' के प्रबन्धों से है] —

१. विक्रम सम्बन्धे रामराज्य कथा प्रबन्ध
२. वसाह आभड प्रबन्ध
३. कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध
४. वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध
५. पृथ्वीराज प्रबन्ध
६. लाखण राउल प्रबन्ध
७. न्याये यशोवर्म्म नृप प्रबन्ध
८. अम्बुचीच नृप प्रबन्ध

और यह संख्या 'पी' और 'बी' के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए पर्याप्त है।

इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ 'पी' तथा 'बी' में मिलता है, उससे निम्नलिखित बातें नितांत स्पष्ट रूप से ज्ञात होती हैं -

१. दोनों संग्रहों में इन आठ प्रबन्धों का जो पाठ मिलता है उसका पूर्वज एक ही है, कारण यह है कि दोनों संग्रहों में इनका पाठ समान है।

२. दोनों संग्रहों में इन आठ प्रबन्धों के पाठ उस सामान्य पूर्वज की दो स्वतंत्र शाखाओं की प्रतियों से लिये गए हैं, अर्थात् दोनों संग्रहों के आदर्श भिन्न-भिन्न और स्वतंत्र शाखाओं के हैं, क्योंकि दोनों में समान पाठ-प्रमाद, समान पाठभ्रंश अथवा समान प्रतिलिपि-प्रमाद एक भी स्थल पर नहीं पाये जाते हैं।

३. 'बी' में प्रक्षेप-क्रिया पाठ-वृद्धि के रूप में दर्शित होती है। कुछ स्थानों पर उसमें अतिरिक्त छंद और अतिरिक्त वाक्य मिलते हैं (यथा: वसाह आभड प्रबन्ध, कुमारपाल कारिताभारि प्रबन्ध, वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध तथा न्याये यशोवर्म्म नृप प्रबन्ध में ; कहीं-कहीं पर पूरा अनुच्छेद या प्रसंग ही बढ़ा हुआ है (यथा, वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध में); और कहीं-कहीं पर जो बात 'पी' में संक्षेप में कही गई है, 'बी' में कुछ बढ़ाकर कही गई है (यथा : वसाह आभड प्रबन्ध तथा वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध में)। 'पी' में भी उपर्युक्त तीनों प्रकार की प्रक्षेप क्रिया दिखायी पड़ती है, यद्यपि मात्रा में 'बी' से कुछ कम (यथा : वस्तुपाल तेजःपाल प्रबन्ध में)। हो सकता है कि इनमें से दो-एक उदाहरण प्रक्षेप के न हों, सामान्य लेखन-प्रमाद के हों, किंतु उनसे निष्कर्ष में कोई अंतर नहीं आता है।

४. यह पाठ-वृद्धि वर्त्तमान 'पी' तथा 'बी' की किसी' पूर्ववर्ती पीढ़ी में हुई, क्योंकि वर्तमान 'पी' तथा 'बी' की प्रतियों में पाठ-वृद्धि के रूप में लिखे हुए कोई वाक्य या छंद नहीं मिलते हैं।

इन तथ्यों को हम निम्नलिखित रूप में व्यक्त कर सकते हैं—

मूल कृति

(यथा चंद की कृति)

|

'पी तथा 'बी' का सामान्य पूर्वज
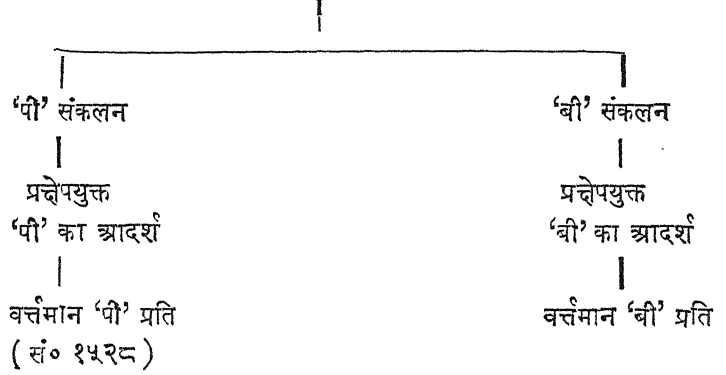
यहाँ हम देखते हैं कि मौलिक उद्‌गम-ग्रंथ (यथा चंद की कृति) और 'पी' अथवा 'बी' के बीच चार पीढ़ियों का अंतर है। 'बी' की तिथि अज्ञात है, किंतु सौभाग्य से 'पी' का अंतिम पत्रा सुरक्षित है और उस पर सं० १५२८ की तिथि दी हुई है। यदि हम प्रत्येक पीढ़ी के लिए पचास वर्षों का समय रखें, जो मेरी दृष्टि में अधिक न होगा, तो चंद की रचनाओं का समय सं० १३२८ के लगभग या उसके पूर्व पड़ता है। जल्ह की स्थिति इतनी निश्चित नहीं है, कारण यह है कि 'जयचंद प्रबन्ध,' जिसमें उसके छंद आते हैं, 'बी' के प्राप्त अंशों में नहीं है। यदि वह 'बी' के त्रुटित अंशों में रहा हो, जिसकी सम्भावना यथेष्ट है, तो जल्ह का समय भी सं० १३२८ के आस पास या उसके पूर्व होना चाहिए, अन्यथा 'पी' के लिपि-काल सं० १५२८ के पूर्व उसका समय कब पड़ता है, केवल 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के प्रबंधों के आधार पर नहीं कहा जा सकता है।

'पुरातन प्रबंधसंग्रह' और 'पृथ्वीराजरासो'

इक्कीस वर्ष हुए प्रसिद्ध जैन विद्वान् श्री मुनि जिनविजय ने 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' नाम से कुछ जैन लेखकों द्वारा लिखे हुए कथाप्रबन्धों का एक संग्रह प्रकाशित किया था,[1] जिसमें अन्य प्रबन्धों के साथ 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'जयचंद प्रबन्ध' भी थे।[2] इन प्रबन्धों के अंतर्गत क्रमशः पृथ्वीराज तथा जयचंद की कथाएँ दी हुई हैं, और साथ साथ दो-दो छप्पय भी उद्धृत किये गए हैं जो चंद बलिद्दिक (बरदाई) के रचे हुए कहे गए हैं। इन प्रबन्धों से चंदवरदाई और एक अन्य कवि जल्ह के समय पर नया प्रकाश पड़ा है,[3] जिसके लिए हमें उक्त मुनि जी का आभारी होना चाहिए। प्रस्तुत अध्याय में हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि उसमें दिये हुए 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' से चंद की पृथ्वीराज सम्बन्धिनी रचना के स्वरूप पर क्या प्रकाश पड़ता है। यह प्रबन्ध उसके अन्य प्रबन्धों की भाँति ही—संस्कृत में है, इसलिए नीचे इसका एक हिंदी भाषांतर दिया जा रहा है और साथ ही इसमें उद्धृत चंद के छप्पयों का अर्थ भी पाद-टिप्पणी में यथास्थान प्रस्तुत किया जा रहा है। कोष्ठकों में आयी हुई शब्दावली आशय के स्पष्टीकरण के लिए प्रस्तुत लेखक द्वारा दी जा रही है।

पृथ्वीराज प्रबन्ध

"शाकंभरी नगरी में चाहमान वंश में श्री सोमेश्वर नामक राजा था। उसका पुत्र पृथ्वीराज था और उस (पृथ्वीराज) का भाई यशोराज था। उस (पृथ्वीराज) का शल्य-

---

१. पुरातन प्रबन्ध संग्रह', प्रकाशक सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३६ ई०।

२. वही, पृ० ८६—८७ तथा ८८-९०।

३. देखिए प्रस्तुत लेखक लिखित 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' चंद तथा जल्ह का समय प्रचारिणी पत्रिका स० २०१२, अंक ३-४, पृ० २३४ अथवा पूर्ववर्ती अध्याय।

हस्त श्रीमाल जाति का प्रतापसिंह था और मंत्री कइंवास था। इन दोनों में परस्पर विरोध था। वह राजा पृथ्वीराज योगिनीपुर (दिल्ली) में राज्य करता था। उसके धवलगृह के द्वार पर न्याय का घंटा था। वह महा बलवान और धनुर्धरों का धुरीण राजा था। यशोराज आशी (हाँसी) नगर में कुमारभुक्त (गुजारेदार) था। उस (पृथ्वीराज) का वाराणसीअधिपति जयचंद से वैर था।

एक बार गर्जनक (ग़ज़नी) के तुर्काधिपति (शहाबुद्दीन) ने पृथ्वीराज से वैर रखते हुए योगिनीपुर (दिल्ली) पर चढ़ाई की। पृथ्वीराज का अमात्य दाहिमा जाति का कइंवास नाम का मंत्रीश्वर था। उसकी अनुमति (मंत्रणा) से राजा (पृथ्वीराज) दो लाख घोड़े तथा पाँच सौ हाथी लेकर (तुर्क सेना के) सामने चल पड़ा। तुर्क सेना से युद्ध हुआ। शक (तुर्क) सेना छिन्न भिन्न हो गई। सुल्तान (शहाबुद्दीन) जीवित पकड़ा गया। सोने की बेड़ियों में डाला जा कर वह योगिनीपुर (दिल्ली) लाया गया और (पृथ्वीराज की ?) माता के कहने पर छोड़ दिया गया। इसी प्रकार वह सात बार बँध बँध कर मुक्त हुआ और करद बना लिया गया।

[शल्यहस्त] प्रतापसिंह कर वसूल करने गर्जनक (ग़ज़नी) जाया करता था। एक बार वह एक मसजिद देखने गया और वहाँ दरवेश आदि को उसने एक लक्ष स्वर्ण टंकक (सिक्के) दिये। (इस पर) मंत्री (कइंवास) ने राजा से कहा, 'देव, गर्जनक (ग़ज़नी) के (कर के) धन से (राजकार्य का) निर्वाह होता है (और उसे) वह (प्रताप सिंह) इस प्रकार बर्बाद कर रहा है!' राजा ने [प्रताप सिंह से] पूछा, तो उसने कहा 'देव की ग्रहविषमता जानकर ही उस समय मैंने [यह धन] धर्म में व्यय किया था। ज्योतिषियों से मैंने पूछा था, उन्होंने आप को कष्ट बताया था।'

इधर शल्यहस्त (प्रताप सिंह) ने राजा के कानों में लगकर कहा, 'मंत्री कइंवास ही बार बार तुर्कों को लाता (बुलाता) है।' राजा [यह सुनकर] रुष्ट हुआ और इसलिए उसने मंत्री (कइंवास) को मारने की ठानी। इसके बाद रात्रि में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) के उठने पर मंत्री (कइंवास) जब प्रतोली (मुख्यद्वार) से निकल रहा था, राजा ने दीपक के अभिज्ञान से बाण छोड़ा। वह (बाण) मंत्री (कइंवास) की कक्ष (काँख) के नीचे से होता हुआ दीपधर के हाथ में जा लगा और (उसके) हाथ से दीपक गिर गया। कोलाहल होने पर राजा ने पूछा, 'अरे यह (कोलाहल) क्या (क्यों) है?' (लोगों ने कहा,) 'देव, घातक के द्वारा मंत्री (कइंवास) पर बाण छोड़ा गया था।' (पृथ्वीराज ने पूछा,) 'अरे! क्या मंत्री (कइंवास) जीवित है?'

(लोगों ने कहा,) 'देव, वे कुशल पूर्वक हैं।' इसके बाद रात्रि के पिछले भाग में द्वारभट्ट चंद बलिद्दिक (बरदाई) ने राजा (पृथ्वीराज) से कहा—

१. इक्कु बाण पहुवीसु जु पइं कइंवासह मुक्कओं।
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओं खणइ खुदइ सइंभरि वणु।
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
नं जाणउं चंद बलद्दिउ किं न विछुट्टइ इह फलह॥

२. अगहु मगहि दाहिमओ [राय ?] रिपु राय खयंकरु।
कूडु मंत्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरु।
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खिवउं बुज्झई।
जंपइ चंद बलिद मज्झ परमक्खर सुज्झइ।
पहु पहुविराय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि।
कइवांस विआस विसट्ठ विणु मच्छि बंधि बद्धओ मरिसि॥

---

१. अर्थात् (१) 'हे पृथ्वीश (पृथ्वीराज), तुमने जो एक (पहला) बाण कइंवास को (लक्ष्य करके) छोड़ा, उस बाण ने (उसके) हृदय के भीतर खलबली कर दी और धीर (कइंवास) की काँख के नीचे से वह चूक (कर निकल) गया। हे सोमेश्वर-नंदन, तुमने दूसरा बाण हाथ में साँधा, तो (उसके लगने से) वह भ्रमित हो गया। इस प्रकार वह दाहिमा (कइंवास) [पृथ्वी में] गड़कर साँभर के वन को खन-खोद रहा है। इस लोभी और पलक्क (लंपट) से इस बार (समय) [पृथ्वी का] यह खल गुड (कवच) स्फुट रूप में नहीं छोड़ा जा रहा है। बलिद्दिक चंद कहता है, न जाने क्यों यह (कइंवास) [अपने कर्मों के] इस फल से नहीं छूट पा रहा है।'

२. '[हे राजा,] रिपुराज (शहाबुद्दीन) को क्षय (नष्ट) करने की सामर्थ्य रखने वाला दाहिमा (कइंवास) अगह (अग्राह्य अथवा अगाध) मार्ग में [जा चुका]

राजा (पृथ्वीराज) ने भेद के भय से अंधकार करा दिया। पहले प्रहरिक काल में सर्व अवसर (दरबार-ए-आम) में मंत्री (कइंवास) आया, तो वह विसूत्रित (अलग) कर दिया गया। भट्ट (चंद बलिदिक) निष्कासित कर दिया गया। उस (चंद) ने कहा, 'पुनः तुम्हारे कल्याणमत के परे मैं (कुछ) नहीं कर रहा हूँ। मैं सिद्ध सारस्वत (सरस्वती पुत्र) हूँ। तुम म्लेच्छ के द्वारा बँधकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगे। (ऐसा कहता हुआ) वह निकलकर वाराणसी चला गया। (वहाँ पर) राजा जयचंद ने (उससे) कहा, 'मैंने तुम्हें बुलाया, किंतु तुम नहीं आये।' (चंद ने उत्तर दिया,) 'देव, तुम भी मृत्यु के निकट हो, इसलिए मैं यहाँ भी नहीं ठहरूँगा।'

इधर कइंवास के हटने पर नया मंत्री हुआ। राजा ने (शल्यहस्त) प्रताप सिंह के भतीजे को अत्यधिक शक्तिसंपन्न समझकर कारागार में डाल दिया। मंत्री (कइंवास) अलग होने पर भी [राजा को] छोड़ नहीं (चैन लेने नहीं दे) रहा था। वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) से मिला। उसने शकों (तुर्कों) का कटक बुलाया। [तुर्कों को] आया सुनकर पृथ्वीराज सामने निकल आया। तीन लाख घोड़े, दस सहस्र हाथी, पंद्रह लाख मनुष्य, इस प्रकार ···। आशी (हाँसी) का अतिक्रमण करके [तुर्क] कटक आगे चला गया। इसके अनंतर सुल्तान (शहाबुदीन) की मंत्री (कइंवास) से बातें हुईं। उसने कहा, 'समय आने पर बुलाऊँगा।'

अब पृथ्वीराज दस दिन सोया रहा, परंतु कोई उसे जगाता नहीं था, (क्योंकि) जो उसे जगाता था, उसी को वह मार डालता था। इसी समय प्रधान (कइंवास) के द्वारा सुल्तान बुलाया गया। राजा जागता नहीं था। धीरे-धीरे कितने ही सामंत युद्ध कर के मारे गए। कुछ भाग भी गए। सहस्र अश्वों···के शेष रहने पर बहिन ने कहा, 'तुम अपने ही लोगों को मारते हो। तुम्हारे सोते सोते (तुम्हारा) सारा कटक मारा

है [जिससे वह वापस नहीं बुलाया जा सकता है]। [तुम] कूट मंत्र मत स्थित करो [क्योंकि] इस प्रकार [तुम्हारा शत्रु] जंबू [पति] से मिलकर झगड़ रहा है। मैं तुम्हें सब परिणाम सिखा रहा हूँ कि तुम सीख कर भी जान सको। बलिद्द चंद कहता है, 'मुझे परम अक्षर (ज्ञान) सूझ रहा है। हे प्रभु पृथ्वीराज, साँभरपति, साँभर के शकुन को सँभालो (स्मरण करो)। व्यास (बुद्धिमान) और वसिष्ठ (श्रेष्ठ) कइंवास के बिना [शत्रु द्वारा] मत्स्यबंध (मछली की भाँति जाल) में बँधकर तुम मृत्यु को प्राप्त होगे।'

गया।' राजा (पृथ्वीराज) ने कहा, 'मैं मंत्री कइंवास……।' उसके विनष्ट होने पर राजा (पृथ्वीराज) शाकंभरी (देवी) को स्मरण करके नाटारंभाश्व पर चढ़कर भागा। भाई (यशोराज) सहित वह पीछा करने वाले तुर्कों के हाथ में नहीं आया।

इधर आशी (हाँसी)… …देश में दो पर्वतिकाओं के बीच में भट्ट (चंद) था। (वहाँ) राजा पृथ्वीराज को भेजकर उसराज (यशोराज) खड़ा हो गया। वह (सुल्तान के) कुछ कटक को (काट कर) खलिहान कर चुका था (जब) वह वहाँ मारा गया। सुल्तान साहबदीन (शहाबुद्दीन) ने उस मंत्री (कइंवास) को……। (राजा) पूँछ रहित सर्प के समान कर दिया गया है, (अपने) स्थान पर पहुँच जाने पर वह किस प्रकार पकड़ा जा सकेगा?' उस (मंत्री) 'छल से।' जैसे ही घोड़ा ने कहा, नाचने लगा, बाजा बजाया जाने लगा। ऐसा करने से घोड़ा (नाटारंभाश्व) नाचता ही रह गया, चला नहीं (और) राजा के गले में सिंगिनी डाल दी गई। सुल्तान ने राजा को पकड़ लिया। स्वर्ण की बेड़ियों में (उसे) डालकर और योगिनीपुर (दिल्ली) लाकर (सुल्तान ने उससे) कहा, 'राजा, यदि तुम्हें जीवित छोड़ दूँ तो तुम क्या करोगे?' राजा (पृथ्वीराज) ने कहा, 'मैंने तुम्हें सात बार मुक्त किया है; क्या तुम मुझे एक बार भी नहीं छोड़ रहे हो?'

अब जिसकी (आँखों की) पुतलियाँ निकाल ली गई थीं, ऐसे राजा (पृथ्वीराज) के सम्मुख सुल्तान (शहाबुद्दीन) सभा में बैठा। राजा (पृथ्वीराज) खेद कर रहा था। उस से प्रधान (कइंवास) ने कहा, 'देव, क्या किया जाये? दैव से ही यह (संकट) उत्पन्न हुआ है।' राजा ने कहा, 'यदि मुझे सिंगिनी और बाण दे दो, तो इस (सुल्तान) को मार डालूँ।' उसने कहा, 'ऐसा ही करिये।' फिर उसने जाकर सुल्तान (शहाबुद्दीन) से निवेदन किया, 'यहाँ पर पर तुमको नहीं बैठना चाहिए। (अतः) वहाँ अपने स्थान पर सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने लोहे का एक पुतला बिठा दिया। राजा (पृथ्वीराज) को सिंगिनी दी गई। राजा (पृथ्वीराज) ने बाण छोड़ा (और) लोहे के पुतले को दो टुकड़े कर दिया; राजा (पृथ्वीराज) ने (तदनंतर) सिंगिनी त्याग दी। (उसने अपने मन में कहा,) 'मेरा काम तो हो नहीं पाया, (इसलिए अब) कोई और (मुझे) ही मारेगा।' इसके बाद वह सुल्तान (शहाबुद्दीन) के द्वारा गढे में डाला जाकर ढेलों से मारा गया। सुल्तान (शहाबुद्दीन) ने कहा, 'इसके रुधिर का भूमि पर गिरना ही शुभ है।' तदनुसार वह मारा गया। संवत् १२४६ में वह स्वर्ग सिधारा। योगिनीपुर (दिल्ली) लौट कर सुल्तान वहीं रह गया।"

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में उपर्युक्त प्रबन्ध के अतिरिक्त नीचे लिखा हुआ वृत्त भी दिया हुआ है—

"योगिनीपुर (दिल्ली) में श्री प्रथिराज (पृथ्वीराज) के ऊपर अठारह लाख घोड़ों (घुड़सवार सेना) के साथ बादशाह (शहाबुद्दीन) चढ़ आया। तब एकादशी का पारण करके राजा निद्राभिभूत हो सो गया था। तब महायुद्ध के (उपस्थित) होने पर गढ़ का प्राकार टूटकर गिर पड़ा। डर के मारे राजा को कोई जगाता नहीं था। कुब्जिका ने (उसका) अँगूठा दबाकर जगाया। तब उसको मारकर वह फिर सो गया। दूसरे दिन चार वीरों के द्वारा वह जगाया गया। स्वरूप (परिस्थिति) को जानने पर वह प्राकार के (उस) वातायन में बैठा। शत्रुओं ने खूब युद्ध किया। (वह पकड़ा गया)। अत्यधिक व्याकुलता के साथ राजा (पृथ्वीराज) ने तारा देवी का स्मरण किया। वह प्रकट हुई। उसी के द्वारा बादशाह के समीप वह रात्रि में मुक्त किया गया। जब उसे मारने के लिए प्रहार किया गया, विष्णु के दर्शन हुए और वह छोड़ दिया गया, दूसरी बार (इसी प्रकार) जटाधारी (शिव) दिखायी पड़े और वह छोड़ दिया गया; तीसरी बार ब्रह्मा दिखायी पड़े और [तारा] देवी ने भी कहा, इसलिए (वह) मारा नहीं गया। (अपने) वस्त्र, हथियार आदि लेकर वह चला आया। सबेरे बादशाह ने वह सब देखा और कहा, '(तुम) जैसे वस्त्र लाये हो वैसे मारे (भी) जाओगे।' बादशाह ने सारे वस्त्र माँगे। राजा ने कहा, 'जाने पर इसका सतगुना भेजूँगा।' ऐसा होने पर सेना वापस चली गई। तदनन्तर राजा जीवग्राह के द्वारा पकड़ा गया। (उसके) बंदी हो जाने पर उसको दिया गया भोजन कुत्ता खा गया यह देखकर वह विषण्ण हुआ। (उसने मन में कहा) 'अरे, यह क्या? मेरी रसोई सात सौ साँड़िनियों के द्वारा लायी जाती थी (और) अब यह अवस्था हो गई। तब तो हम लोग युद्ध के द्वारा मारे गए।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह अंतिम वृत्तकथा प्रबंध की दृष्टिसे नहीं, तारा देवी के स्मरण का महत्व प्रतिपादित करने की दृष्टि से लिखा गया है। कथाप्रबन्ध की दृष्टि से केवल 'पृथ्वीराजप्रबन्ध' ही विचारणीय है। ऊपर दिये हुए 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में तीन कथाएँ आती है—एक तो पृथ्वीराज पर किये हुए शहाबुद्दीन के असफल आक्रमण की है, दूसरी कइंबास के मंत्रिपद से हटाये जाने और द्वारभट्ट चंद के निष्कासित किये जाने की है और तीसरी पृथ्वीराज पर किये हुए शहाबुद्दीन के अंतिम आक्रमण और पृथ्वीराज के अंत की है। अभी तक 'पृथ्वीराजरासो' के मुख्यतः

चार छोटे बड़े पाठ प्राप्त हुए हैं।[1] उनमें भी ये तीनों कथाएँ आती है—एक पाठ में शहाबुद्दीन के एक असफल आक्रमण का उल्लेख स्पष्ट रूप से होता है। किंतु दोनों का मिलान करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराजरासो' में इन कथाओं की कल्पना, कुछ अति प्रचलित सामान्य तत्वों को छोड़कर, भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है।

पृथ्वीराजरासो

'पृथ्वीराजरासो' में उपर्युक्त तीनो कथाएँ इस प्रकार विवृत हैं—

१. उसके तीन पाठों, वृहत्, मध्यम तथा लघु, में पहली कथा इस प्रकार कही गई है, गुर्जर का चौलुक्य नरेश भीम आबू के सलष पँवार की कन्या इच्छिनी से विवाह करना चाहता था। उसने सलष के पास इस आशय का संदेश भेजा। सलष के अस्वीकार करने पर उसने उक्त आबूपति पर आक्रमण कर दिया। सलष ने, जो पृथ्वीराज का सामंत था, जब इस आक्रमण की सूचना पृथ्वीराज को भेजी, पृथ्वीराज सेना लेकर भीम का सामना करने के लिए चल पड़ा। तब तक दूसरी ओर से शहाबुद्दीन ने भी आक्रमण कर दिया था, इसलिए उसने उक्त सेना के दो भाग कर एक को कइंवास के नायकत्व में भीम का सामना करने के लिए भेज दिया और दूसरे को लेकर शहाबुद्दीन का सामना करने के लिए स्वयं बढ़ा। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की सेनाओं की मुठभेड़ सारोले में हुईं, और भीम से कैंवास का युद्ध सोभत्ती में हुआ। दोनो युद्धों में पृथ्वीराज को एक साथ विजय प्राप्त हुई, इससे पृथ्वीराज की आन बहुत बढ़ गई।

'लघुतम पाठ' में इन दोनों युद्धों के विवरण नहीं आये हैं किन्तु जयचंद-शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध के प्रसगों में उसमें भी निम्नलिखित दो छंद आते हैं जिनमें इन दोनों युद्धों के एक साथ आ पड़ने और दोनों में पृथ्वीराज को विजय प्राप्त होने का उल्लेख होता है—

> मति घट्टिय सामंत मरन भय मोहि दिखायउ।
> जम चिट्ठिय बिन होइ कहन क्यौं तुमहि सुहायउ।

---

१. देखिए नरोत्तम दास स्वामी—'पृथ्वीराजरासो का लघुतम रूपान्तर', राजस्थान भारती भाग ४, अंक १, पृ० ३।

तुम गंज्यौ भर भीम तासु गब्बहु मयमत्तउ।
मैं गोरी साहाब साहि सारौल सुभत्तउ।
मो चरन सरन हिंदुव तुरक तिहि सरनगति तुम करहु।
बुज्झिभय न सूर सामंत हो इतौ बोझु अप्पन धरहु॥
(तुल० नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण : ६१.१५६४)

तैं जित्यौ गज्जनौ तूं ज अड्डौ हम्मीरा।
तैं जित्यौ चालुक पहरि सन्नाह सरीरा।
तैं पहुपंग नरिंद इंद गहियह जिमि राहहं!
तैं गोरी दल बध्यौ बार षट बन जिमि दाहहं।
तुव तुंग तेग तुव उच्च मन तैं तो पास न मिल्लियै।
चावंड राय दाहरतनै तो भुज उप्पर षिल्लियै॥
(तुल० नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण : ६६-३६७)

२. 'पृथ्वीराजरासो' के समस्त पाठों में दूसरी कथा इस प्रकार कही गई है—पृथ्वीराज की एक दासी थी जो कर्नाट देश की थी। उस पर पृथ्वीराज का मंत्री कइंवास अनुरक्त हो गया था। अवसर पाकर एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए गया हुआ था, रात्रि में कइंवास उस दासी के कक्ष में गया। पटरानी इञ्छिनी को एक दासी ने यह सूचना दी, तो उसने पृथ्वीराज को अविलंब आने के लिए संदेशा भेजा। संदेश पाकर पृथ्वीराज आ गया। इञ्छिनी ने उस कक्ष की ओर संकेत किया जिसमें उस कर्नाटी दासी के साथ कइंवास था। भादों की रात थी। बिजली के सहसा चमक जाने से पृथ्वीराज की दृष्टि कइंवास पर जा पड़ी। तदनन्तर पृथ्वीराज ने बाण का संधान किया। पहला बाण तो कइंवास की काँख के नीचे से होता हुआ निकल गया, किन्तु दूसरा बाण उसके प्राण लेकर निकला। पृथ्वीराज ने मृत कइंवास को गढ्ढा खुदवा कर गड़वा दिया। यह घटना रातोरात इस प्रकार घटित हुई कि किसी को पता तक नहीं लगने दिया गया। पृथ्वीराज पुनः आखेट के लिए लौट

गया। दूसरे दिन आखेट से आकर उसने दरबार किया। इसमें उसने कइंवास के सम्बंध में प्रश्न किया कि वह कहाँ है। किन्तु किसी को भी यह ज्ञात नहीं था कि कइंवास कहाँ था। पृथ्वीराज ने चंद से भी यही प्रश्न किया। रात्रि में चंद से सारी घटना सरस्वती ने बता दी थी, इसलिए चंद ने कइंवास के बध की समस्त घटना विवृत्त कर दी। दरबार समाप्त हुआ। इधर कइंवास की स्त्री को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने चंद से कइंवास का शव दिलाने के लिए अनुरोध किया। चंद ने पृथ्वीराज से कइंवास का शव उसकी स्त्री को प्रदान किये जाने के लिए प्रार्थना की, तो पृथ्वीराज ने उसकी प्रार्थना इस शर्त पर स्वीकार की कि वह उसे अपने साथ लेकर कन्नौज दिखायेगा। चंद के इसे स्वीकार करने पर कइंवास का शव उसकी विधवा को दिया गया जिसको लेकर वह सती हुई। इस घटना के अनन्तर पृथ्वीराज चंद के साथ उसका अनुचर बनकर छद्मवेश में कन्नौज जाता है और कथा आगे बढ़ती है।

३. तीसरी कथा पृथ्वीराज के तीन पाठों-बृहद्, मध्यम तथा लघु में इस प्रकार कही गई है। कन्नौज से संयोगिता को लाने के अनन्तर पृथ्वीराज विलास में लिप्त हो गया। वह महल के भीतर ही पड़ा रहता था और इस विलासाधिक्य के कारण उसका पौरुष भी घट गया था। उसके सामंत उसके इस आचरण से बहुत असंतुष्ट हो गए थे। उधर शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर आक्रमण करने की घात में निरन्तर रहता था। गुप्तचरों से उसे ज्ञात हुआ कि पृथ्वीराज विलासिता में इतना डूबा हुआ था कि महल ही उसका दीवान भी बन गया था और उसके सामंत उससे रुष्ट हो गए थे। अतः उपयुक्त अवसर समझकर उसने पृथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया। राज-गुरु तथा चंद के प्रयत्नों से पृथ्वीराज की विलास निद्रा भंग हुई, किन्तु विलम्ब हो चुका था। संयोगिता के लिए किये हुए कन्नौज के युद्ध में उसके अधिकतर वीर सामंत कट चुके थे, रहे सहे जो थे, वे भी रूठ गए थे, और एक प्रमुख सामंत हाहुलीराय जो जंबु (जम्मू) का अधिपति था शहाबुद्दीन से मिल भी गया था। इसलिए पृथ्वीराज इस बार शहाबुद्दीन का सामना सफलता पूर्वक नहीं कर सका। युद्ध में सम्मिलित सामंतों में से अधिकतर के कट जाने के बाद वह स्वयं युद्ध करने लगा। इसी समय एक तुर्क सरदार ने उसके गले में सिंगिनी डालकर उसे गिरा दिया और वह बंदी हुआ। तदनन्तर शहाबुद्दीन उसे ग़ज़नी ले गया, जहाँ कुछ समय पीछे उसने उसकी आँखें निकलवा लीं। इस बीच चंद जंबूपति हाहुलीराय

को मना कर पृथ्वीराज के पक्ष में करने के लिए उसके पास गया हुआ था, तो हाहुलीराय ने उसे जालंधर की देवी के मंदिर में देवी का आदेश प्राप्त करने के बहाने ले जाकर बंद कर दिया था। किसी प्रकार वहाँ से मुक्त हो कर जब चंद दिल्ली लौटा तो उसने पृथ्वीराज के बंदी बनाये जाने और नेत्रविहीन किये जाने की सारी घटना सुनी। उसने अविलंब ग़ज़नी की राह ली और उसने अपने स्वामी पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन से उद्धार कराने का संकल्प किया। ग़ज़नी पहुँचकर शहाबुद्दीन को उसने पृथ्वीराज का शर-संधान कौशल देखने के लिए राजी कर लिया। पृथ्वीराज शब्दवेध में अत्यन्त कुशल था। कौशल-प्रदर्शन का आयोजन हुआ। चंद ने शहाबुद्दीन से कहा कि जब तक शहाबुद्दीन स्वयं तीन बार पृथ्वीराज को बाण चलाने का आदेश न देगा, वह बाण न चलायेगा। अतः शहाबुद्दीन ने उसे तीन बार आदेश देना भी स्वीकार कर लिया। शहाबुद्दीन का तीसरा आदेश होते ही पृथ्वीराजने जो बाण छोड़ा, उसने शहाबुद्दीन का प्राणान्त कर दिया। इसके अनन्तर पृथ्वीराज का भी प्राणान्त हो गया।

'पृथ्वीराजरासो' के शेष एक लघुतम पाठ में भी वह समस्त कथा है, केवल हाहुलीराय के सम्बंध के विस्तार उसमें नहीं है,

समीक्षा

ऊपर दी हुई 'पृथ्वीराजप्रबन्ध' तथा 'पृथ्वीराजरासो' की इन कथाओं में जो साम्य तथा अन्तर है, वह इस प्रकार का है।

पहली कथा में साम्य इतना ही है कि पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में एक युद्ध हुआ जिसमें शहाबुद्दीन को पराजय मिली। अन्तर दोनों में यह है कि उसी समय पृथ्वीराज ने भीम चौलुक्य जैसे एक अन्य प्रबल शत्रु का भी सफलतापूर्वक सामना किया, जिससे उसकी शक्ति की आन बहुत बढ़ गई।

दूसरी तथा तीसरी कथाओं के सम्बंध में दोनों मे जहाँ पर साम्य इस बात में है कि पृथ्वीराज ने कइंवास और शहाबुद्दीन पर बाण छोड़े, अन्तर यह है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में दोनों अवसरों पर वह अकृतकार्य हुआ है, जब कि 'पृथ्वीराजरासो' में दोनों अवसरों पर पूर्ण रूप से कृतकार्य हुआ है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में कइंवास पर बाणप्रहार पृथ्वीराज यह समझकर करता है कि वही शहाबुद्दीन को बार बार बुलाता

जब कि 'पृथ्वीराजरासो' में उसकी लंपटता के कारण वह उसे मारता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में पृथ्वीराज कइंवास पर एक ही बाण छोड़ता है, जब कि 'पृथ्वीराजरासो' में उसके चूक जाने पर वह दूसरा बाण भी छोड़ता है, जो कइंवास का प्राणान्त कर देता है। 'पृथ्वीराजप्रबन्ध' में कइंवास और चंद दोनों को पृथ्वीराज उनके पदों से अलग कर देता है, किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' में वह कइंवास का प्राणान्त कर देता है और चंद को पूर्ववत् अपना कृपापात्र और सहचर बनाये रखता है। 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में अलग किये जाने पर कइंवास अपने स्वामी के शत्रु से मिलकर स्वामी का पराभव और अन्त कराता है और चंद भी अपने स्वामी के एक शत्रु के पास जाता है, यद्यपि वह वहाँ रुकता नहीं है, किन्तु 'पृथ्वीराजरासो' में दो में से एक बात भी नहीं घटती है; 'पृथ्वीराज-रासो' में तो शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर स्वयं यह सुनकर आक्रमण करता है कि उसकी शक्ति कन्नौज के युद्ध में क्षीण हो चुकी है और उसके सामन्त उससे रूठे हुए हैं। 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' में पृथ्वीराज इस युद्ध में नाटारंभाश्व पर चढ़कर भाग निकलता है, यद्यपि मंत्री कइंवास के छल से पकड़ा जाता है; 'पृथ्वीराज रासो' में वह उठकर युद्ध करता है और युद्ध करते हुए छल से पकड़ा जाता है। दूसरी ओर, 'पृथ्वी-राज प्रबन्ध' में उस जंबूपति हाहुली राय का कोई उल्लेख नहीं होता है, जिसने 'पृथ्वीराजरासो' में शत्रुपक्ष से मिलकर अपने राजा पृथ्वीराज का पराभव कराया है। अतः यह नितान्त प्रकट है कि 'पृथ्वीराज-प्रबन्ध' की कथा 'पृथ्वीराज-रासो' के किसी भी ज्ञात रूप पर आधारित नहीं है।

फिर भी हम ऊपर देख चुके हैं कि 'पृथ्वीराजप्रबन्ध' में चंद के रचे हुए दो छंद उद्धृत हुए हैं। अतः कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक के सम्मुख 'पृथ्वीराजरासो' का कोई अन्य पाठ रहा होगा जो अभी तक हमें प्राप्त नहीं हुआ है, और बहुत सम्भव है कि 'रासो' का वही मूल अथवा कम से कम प्राचीनतर पाठ रहा हो। किंतु यदि उद्धृत छंदों को ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यह कल्पना निराधार प्रमाणित होती है।

उद्धृत प्रथम छंद में कहा गया है कि प्रथम बाणप्रहार से अकृतकार्य होने पर कइंवास पर 'पृथ्वीराज ने दूसरा बाण छोड़ा'

'बीअं करि संधीउ भंभइ सूमेसर- नंदण।'

यह विवरण स्पष्ट ही 'पृथ्वीराज प्रबंध' के विवरण के विरुद्ध है। फिर छंद में कहा गया है कि 'इस प्रकार दाहिमा (कइंवास) (पृथ्वी में) गड़कर साँभर के वन को खन खोद रहा है :

'एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइंभरि वणु।'

और 'स्फुट रूप से इस लोभी और लंपट (कैंवास) से (पृथ्वी का) वह खल (कठिन) गुड (कवच) नहीं छोड़ा जा रहा है।'

'फुड छंडि न जाइ इह लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।'

जिससे यह प्रमाणित है कि कइंवास मारा जाकर भूमि में गाड़ दिया गया था। यह विवरण तो 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के कइंवास सम्बंधी समस्त विवरणों के विरुद्ध जाता है। इतना ही नहीं, छंद में जो 'पलकहु' (पलक= लंपट) शब्द आता है, वह भी कइंवास वध की उस कथा को प्रमाणित करता है जो 'रासो' के समस्त पाठों में आती है। अतः यह सिद्ध है कि यह छंद 'रासो' के इस समय प्राप्त अथवा इनसे मिलते-जुलते रूपों में से किसी से लिया गया है, और 'पृथ्वीराजप्रबंध' की कथा का आधार वह रूप नहीं था।

दूसरे छंद में भी इस प्रकार कहा गया है कि यह (शत्रु) (इस बार) जंबू (पति) से मिलकर तुमसे झगड़ रहा (युद्ध कर रहा) है :

'कूड मंत्र मन ठवओ एहु जबूय मिलि जग्गरु'

और जंबूपति (हाहुलीराय) से मिलकर शहाबुद्दीन के पृथ्वीराज से युद्ध करने की कथा 'रासो' के ही पाठों में आती है, 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में नहीं।

साथ ही ऊपर उद्धृत दोनों छंद 'पृथ्वीराजरासो' में मिल जाते हैं। पहला तो सभी प्राप्त पाठों में मिलता है, दूसरा उसके वृहत् पाठ में मिलता है, जिसका एक संपादित संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित है। 'पृथ्वीराज रासो' के दो अन्य पाठों—मध्यम तथा लघु—में इससे मिलता जुलता एक अन्य छंद है, जो निम्नलिखित है —

इह जैत राव चामंडराव इह देवरा बग्गरिय ।
इह बलिय राव बलिभद्र राव कूरंभ संभरिय ।
इह खीची राव प्रसङ्ग जाम जादों भर भषिषय ।
खनिराज पहुप्रान साम दानह घर रषिषय ।
सामंत मंत कैमास बिन बल बन्ध्यो सुरतान दल ।।
सामंत सिंह दुज्जन सया दया न किज्जै कालखल ।।

—२ (६२-२-३)

और यह छंद बृहद् पाठ में भी पाया जाता है (ना० प्र० स० संस्करण : ६६. ४७८)। 'पृथ्वीराज-प्रबंध' में उद्धृत द्वितीय छंद और इसमें साम्य यह है कि इसमें भी इस अवसर पर कइंवास का अभाव खल रहा है। यह छंद 'पृथ्वीराज रासो' के कथित 'लघुतम रूपान्तर' में अवश्यन हीं है ।

एक बात और भी यहाँ विचारणीय है—'पृथ्वीराज प्रबंध' में दोनों उद्धृत छंद कइंवास पर पृथ्वीराज के द्वारा किये हुए बाणप्रहार के प्रकरण में चंद द्वारा कहे गए बताये गए हैं, जब कि 'पृथ्वीरास रासो' में पहला तो उस प्रकरण में उसी प्रकार आता है, दूसरा शहाबुद्दीन के द्वारा पृथ्वीराज पर किये गए अंतिम आक्रमण के प्रसंग में आता है। 'पृथ्वीराजप्रबंध' में भी कइंवास पर किये गए बाणप्रहार के प्रसंग में शत्रु के आक्रमण की कोई विभीषिका नहीं है वह तो करद बनाया जा चुका है और न 'एहु जंबूय मिलि जग्गरु' का कोई प्रसंग है, जिसका पाठ 'पृथ्वीराजरासो' में 'मिले जंबूवै जंगर' अर्थात् 'जंबूपति से मिलकर युद्ध कर रहा है।' जंबूपति के शत्रु से मिल जाने का यह प्रसंग 'प्रबन्ध' में तो आता ही नहीं है, और 'पृथ्वीराजरासो' में शहाबुद्दीन के पृथ्वीराज पर किये हुए अंतिम आक्रमण के अवसर पर उपस्थित होता है। अतः यह प्रमाणित है कि 'पृथ्वीराजप्रबन्ध' में उद्धृत द्वितीय छंद का वास्तविक स्थान वह नहीं हैं जो उसमें है, बल्कि वह है जो 'रासो' में मिलता है।

इन समस्त बातों पर विचार करने पर यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में दी हुई कथा 'रासो' के किसी रूप पर आधारित नहीं है, वह

किसी अन्य सूत्र से ली गई है, केवल ऊपर उद्धृत दो छंदों को चंद की मूल रचना अथवा उसके किये हुए किसी संकलन से लेकर 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में एक स्थान पर रख दिया गया है ।

अन्यत्र हम देख ही चुके हैं कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के 'जयचंद प्रबन्ध' में जो छंद चंद के कहे गए बताये गए हैं, वे चंद के नहीं हैं, जल्ह कवि के है—'जल्ह कवि' की छाप स्पष्ट रूप से उक्त दोनों चदों में आयी हुई है ।[१] अतः इन जैन प्रबंधों की कथा के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' या चंद रचित पृथ्वीराज विषयक काव्य की कथा कल्पना करना उचित न होगा और न इन प्रबन्धों में चन्द के छंदों के मिलने के कारण यह मानना ही ठीक होगा कि 'रासो' का कोई रूप इन प्रबन्धों की कथा का आधार रहा होगा ।

किंतु क्या, इसी प्रकार, हम यह भी कह सकते हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत चंद के छंदों से 'पृथ्वीराजरासो' के स्वरूप के सम्बंध में हम कोई कल्पना नहीं कर सकते हैं? कुछ विद्वानों का यही मत है । एक विद्वान् ने लिखा है, "मुनि जिन विजय जी को मिले चार फुटकर छप्पयों से 'पृथ्वीराज रासो' का रचा जाना सिद्ध नहीं होता है । हो सकता है कि चंद नामक किसी कवि ने पृथ्वीराज की जीवन घटनाओं पर कुछ फुटकर छंद ही लिखे हों," और "इस छंद का अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो से सम्बंध जोड़ना अनुचित है ।"[२] किन्तु इन छंदों से यह स्वतः प्रकट है, जैसा हमने ऊपर देखा है, कि वे स्वतंत्र या फुटकर ढंग पर लिखे हुए छंद नहीं हैं । वे तो कुछ विशिष्ट प्रकरणों के छंद हैं और उनके अभाव में इन-रचना की कल्पना नहीं की जा सकती है । अतः यह मानना पड़ेगा कि ये छंद चंद की किसी प्रबन्धकृति से लिये गए हैं, भले ही उसका नाम 'पृथ्वीराजरासो' रहा हो या कुछ और । और हम ऊपर यह भी देख चुके हैं कि 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' में उद्धृत उपर्युक्त छंद 'पृथ्वीराजरासो' के कथाप्रबन्ध में पूर्ण रूप से ठीक बैठते हैं उसमें वे मिलते तो हैं ही । अतः अधुना प्रचलित 'पृथ्वीराजरासो' से इन छंदों के रचयिता चंद का सम्बंध जोड़ना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं माना जा सकता है । यह प्रश्न

---

१. देखिये 'हिंदी रासो परंपरा का एक विस्मृत कवि जल्ह' ।

२. श्री मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थान का पिंगल साहित्य, क्रमशः पृ० ४९ तथा ३८ ।

भिन्न है कि 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' में इन छंदों के रचयिता चंद की रचना कितनी है और कितनी दूसरों की है।

फलतः इस 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' से यह प्रमाणित हो जाता है कि इसकी रचना के पूर्व ही किसी के द्वारा 'पृथ्वीराज रासो' या अन्य किसी नाम से पृथ्वीराज विषयक कोई सुनियोजित प्रबन्ध-काव्य रचा जा चुका था, जो किसी न किसी रूप और किसी न किसी मात्रा में 'अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासो' में भी सुरक्षित है। अन्यत्र हम देख चुके हैं कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के इस प्रबन्ध के आधार पर उस रचना का समय चौदहवीं शती विक्रमीय के पूर्वार्द्ध में होना चाहिए। अतः 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संकलित इस 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' ने निस्संदेह एक नया और महत्वपूर्ण प्रकाश चंद के समय और उसकी रचना के स्वरूप पर डाला है। यह एक बड़ा उपकार इस जैन प्रबन्ध के प्रकाशन से हुआ है।

'पुरातन प्रबंध संग्रह' में चंद की रचना का स्वरूप

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' और चंद तथा उसकी रचना से सम्बद्ध दो अध्याय इस पुस्तक में प्रकाशित कर चुके हैं।[1] प्रस्तुत अध्याय भी उसी के अंतर्गत है। पहले अध्याय में यह दिखाने की चेष्टा की गई थी कि 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' के आधारभूत एक जैन प्रबन्धसंग्रह की प्रतिलिपि-तिथि सं० १५२८ से उसमें उद्धृत चंद के छंदों का समय अनुमानतः लगभग दो शती पहले होना चाहिए। दूसरे लेख में यह दिखाने का यत्न किया गया गया था कि उक्त संग्रह में उद्धृत चंद के छंद किसी स्फुट रचना के नहीं हो सकते हैं, वे एक सुनियोजित प्रबन्धकाव्य के छंद होने चाहिए (यद्यपि उक्त संग्रह में पृथ्वीराज विषयक जो कथा दी हुई है वह उस काव्य पर आधारित न होनी चाहिए), और यह कि वह काव्य किसी न किसी रूप और किसी न किसी मात्रा में वर्तमान 'पृथ्वीराजरासो' में भी सुरक्षित है। प्रस्तुत अध्याय में इस प्रश्न पर विचार किया जायेगा कि उक्त संग्रह में दी हुई पृथ्वीराज की कथा के लेखक को चंद की रचना अपने मूल रूप में प्राप्त थी अथवा किसी प्रक्षिप्त रूप में।

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में उद्धृत चंद के दो छंदों में से एक जो पहले भी दिया जा चुका है, निम्नलिखित है—

अगहुम गहि दाहिमओ राय रिपुराय खयंकरु,
कूडु मन्त्र मम ठवओ एहु जंबूय मिलि जग्गरु।
सहनामा सिक्खवउं जइ सिक्खविउं बुज्झइ,
जंपइ चंद बलिद्दु मज्झ परमक्खर सुज्झइ।

---

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६० (सं० २०१२), अंक ३-४, पृ० २३४।

२. वही, वर्ष ६२, (सं० २०१४), अंक २-३, पृ० १।

पहुपहुविगाय सइंभरि धणी सयंभरि सउणइ संभरिसि,
कइंवास विआस बिसन्थ विणु मच्छिबंधि बद्धओ मरिसि ॥

सुविधा के लिए इसका अर्थ भी पुनः नीचे दिया जा रहा है—

[हे राजा], रिपुराज (शहाबुद्दीन) के क्षय (नष्ट) करने (की सामर्थ्य रखने) वाला दाहिमा (कइंवास) अगह (अग्राह्य अथवा अगाध) मार्ग में (जा चुका) है (जिससे वह वापस नहीं बुलाया जा सकता है)। (तुम) कूट मंत्र मत स्थिर करो, (क्योंकि) इस प्रकार (तुम्हारा शत्रु) जम्बू (पति) से मिलकर झगड़ रहा है। मैं तुम्हें सब परिणाम सिखा रहा हूँ कि तुम सीख कर भी जान सको। वलिद्द चंद कहता है, मुझे परम अक्षर (ज्ञान) सूझ रहा है। हे प्रभु पृथ्वीराज, साँभरपति, साँभर के शकुन को सँभालो (स्मरण करो)। व्यास (बुद्धिमान) और वसिष्ठ (श्रेष्ठ) कइंवास के बिना (शत्रु द्वारा) मत्स्यबन्ध (मछली की भाँति जाल) में बँध कर तुम मृत्यु को पाप्त होगे।

'पृथ्वीराज रासो' के चार प्रमुख रूपों[1] में से यह छंद केवल वृहद् (नागरी-प्रचारिणी सभा संस्करण) तथा मध्यम में मिलता है, लघु तथा लघुतम रूपों में नहीं मिलता है। किंतु वृहद् तथा मध्यम के विभिन्न रूपांतरों में भी यह एक प्रसंग में नहीं मिलता है और न उस प्रसंग में मिलता है जिसमें यह 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में मिलता है। वृहद् रूप की प्रतियों में यह छंद शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज की तत्सम्बन्धी विचारगोष्ठी के प्रसंग में मिलता है[2], मध्यम के एक रूपांतर में—जिसकी एक प्रति सं० १७६२ की है और श्री अगरचंद नाहटा के संग्रह में है—यह छंद धीर पुंडीर द्वारा शहाबुद्दीन के पराजित और बंदी किये जाने के अनन्तर पृथ्वीराज द्वारा उसे मुक्त किए जाने के प्रसंग में आता है,[3] और मध्यम के एक अन्य रूपांतर में—जिसकी एक प्रति सं० १७०० के लगभग की ज्ञात होती है और रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन के संग्रह में (टॉड संग्रह की प्रति सं० ६०) है—यह छंद बाण-वेध के प्रसंग में आता है,[4] जिसमें पृथ्वीराज

---

१. नरोत्तमदास स्वामी : पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपांतर, राजस्थान भारती भाग ४; अंक १; पृ०–३।

२. नागरीप्रचारिणी सभा संस्करण; समय ६६; छन्द ४७५।

३. खंड २६; छंद १४८

४. बानबेध खंड; छंद १४६।

शब्दवेध के कौशल द्वारा शहाबुद्दीन का वध करता है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' की कथा में यह कइंवास-वध के प्रसंग में आता है, जो पहले बताया जा चुका है।[1] अतः जब हम यह देखते हैं कि 'पृथ्वीराज रासो' के लघुतम रूप की प्राप्त दोनों प्रतियों में—जिनमें से एक सं० १६६४ की तथा दूसरी सं० १६६७ की है[2]—एवं लघुरूप की प्राप्त समस्त प्रतियों में—जिनमें से एक सं० १६७६ के पूर्व की है[3] यह छन्द नहीं मिलता है और 'पृथ्वीराज रासो' के शेष रूप रूपांतरों तथा 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में भी एक ही प्रसंग में नहीं मिलता है, इस छंद की प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाती है।

यदि हम प्रसंग की दृष्टि से देखें, तो यह ज्ञात होगा कि यह छंद कइंवास-वध प्रसंग का नहीं हो सकता है, क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो' में भी उस समय तक शहाबुद्दीन तथा जंबूपति की कूट संधि नहीं हुई रहती है; 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' की कथा में में तो जंबूपति कहीं आता ही नहीं है, इसलिए उसका कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। धीर पुंडीर के द्वारा शहाबुद्दीन के बन्दी किये जाने और तदनन्तर पृथ्वीराज के द्वारा उसके मुक्त किये जाने के प्रसंग में भी यह छंद किसी प्रकार संगत नहीं हो सकता है, क्योंकि उस समय शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के एक सामंत द्वारा पराजित और बन्दी था ही। बाण-वेध के प्रसंग में भी यह छंद संगत नहीं हो सकता है, क्योंकि उस समय सारा युद्ध समाप्त था, पृथ्वीराज शहाबुद्दीन का बन्दी था और उसकी आँखें तक निकाली जा चुकी थीं, उस समय तो शहाबुद्दीन का शब्दवेध के कौशल से प्राणांत करने के लिए पृथ्वीराज को प्रोत्साहित करना चंद का अभीष्ट था, इसलिए इस छन्द में जिस प्रकार की निरुत्साह पूर्ण बातें कही गई है, उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज द्वारा नियोजित गोष्ठी में हो किसी अंश तक यह छन्द संगत हो सकता था, किंतु वहाँ भी 'व्यास (बुद्धिमान) और बसिष्ठ (श्रेष्ठ) कइंवास के बिना (हे पृथ्वीराज) तुम (शत्रु द्वारा) मत्स्यबंध में बाँधे जाकर मृत्यु को प्राप्त होगे' ऐसे निरुत्साहपूर्ण कथन चंद से कराने की कौन सी आवश्यकता हो सकती थी, फिर चंद के इस कथन पर पृथ्वीराज की प्रतिक्रिया क्या हुई, 'पृथ्वीराज रासो' में यह नहीं कहा गया है। अतः यह प्रकट है कि जिन विभिन्न प्रसंगों में यह छंद

---

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका; वर्ष ६२ (सं० २०१४) अंक २–३; पृ० २–२।

२. ३. नरोत्तमदास स्वामी: पृथ्वीराज रासो का लघुतम रूपांतर, राजस्थान भारती; भाग ४; अंक २; पृ० ७।

'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' तथा 'पृथ्वीराज रासो' रूप-रूपांतर में आता है, उनमें से किसी में भी यह संगत नहीं है।

इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है, 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' में उसी प्रसंग में उद्धृत[1] शेष अन्य छन्द में —जो कि 'पृथ्वीराजरासो' की भी प्रतियों में समान रूप से मिलता है—कइंवास को लोभी और पलक्क (लंपट) कहा गया है:

कुड छंडि न जाइ इहु 'लुब्धिउ' बारह 'पलकइ' खल गुलह

और उसके बाद ही इस छन्द में उसे व्यास (बुद्धिमान) और बसिष्ठ (श्रेष्ठ) कहा जाता है! दोनों कथनों में परस्पर जो स्पष्ट विरोध है, वह इस छन्द के प्रामाणिक होने की सम्भावना को और भी समाप्त कर देता है।

उपर्युक्त तथ्यों के साथ यदि हम इस तथ्य को भी देखें कि जंबूपति के इस प्रकार शहाबुद्दीन के साथ मिल कर पृथ्वीराजके विरुद्ध युद्ध करने की कथा न 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' में आती है, और न 'पृथ्वीराज रासो' के लघुतम रूप के किसी रूपांतर में आती है, वह केवल पृथ्वीराज के कुछ रूप-रूपांतरों में आती है, यह स्पष्ट हो जाता है कि कइंवास को 'व्यास' (बुद्धिमान) और 'बसिष्ठ' (श्रेष्ठ) कहने वाला और पृथ्वीराज को अकारण ही हताश करनेवाला यह छन्द प्रक्षिप्त है और 'पुरातन प्रबन्धसंग्रह' में दिये हुए 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के लेखक को चंद की रचना अपने मूल रूप में पाप्त नहीं थी, उसे वह अपने किसी प्रक्षिप्त रूप में ही प्राप्त थी।

---

१. नागरीप्रचारिणी पत्रिका; वर्ष ६२ (स० २०१४); अंक २-३; पृ० २।

पृथ्वीराज विजय और पृथ्वीराज-रासो

सन् १८७५ ई० में प्रसिद्ध विद्वान् डा० बूह्लर को संस्कृत ग्रन्थों की खोज में काश्मीर में 'पृथ्वीराज विजय' की एक अति खंडित प्रति प्राप्त हुई थी[1] जिसने चंद के 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को एकदम समाप्त कर दिया। तब से 'रासो' की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के प्रयास होते आ रहे हैं, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि वे असफल ही रहे हैं। 'रासो' के प्राप्त रूपों में से किसी के आधार पर भी उसकी ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना सम्भव होगा, यह आशा नहीं की जा सकती है, क्योंकि सभी रूपों में अनैतिहासिक तत्व मिलते हैं। कुछ विद्वानों ने 'रासो' की इस त्रुटि का समाधान यह बता कर करना चाहा है कि वह काव्य है, इतिहास नहीं है। किन्तु 'विजय' भी तो काव्य ही है, किन्तु उसमें 'रासो' जैसे अनैतिहासिक तत्व नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिए दोनों में दी हुई पृथ्वीराज के पूर्व पुरुषों की वंशावली को लिया जा सकता है।

'पृथ्वीराज विजय' के प्रथम छह सर्गों में पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों की कथा देते हुए सप्तम सर्ग में सोमेश्वर तथा कर्पूरदेवी से उसके जन्म का उल्लेख किया गया है,[2] और उसके अनुसार वंशावली इस प्रकार ठहरती है :—

---
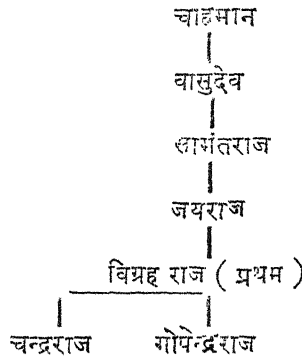
१. डिटेल्ड रिपोर्ट ऑफ़ ए टूअर इन सर्च ऑफ़ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स मेड इन काश्मीर; राजपूताना एँड सेंट्रल इंडिया'—लेखक डा० बूह्लर, पृ० ६३।

२. पृथ्वीराज विजय महाकाव्यम्—संपा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, वि० सं० १९९७।

दुर्लभराज
गोविंदराज
गुवाक
चंदनराज
वाक्पति
सिंहराज
विग्रहराज (द्वितीय)
दुर्लभराज
गोविन्दराज
वाक्पतिराज (द्वितीय)
वीर्यराम
चामुण्ड
दुर्लभ
विग्रहराज (तृतीय)
पृथ्वीराज
अजयराज
अर्णोराज
०
विग्रहराज (चतुर्थ)
पृथ्वीभट
अपरगाङ्गेय
सोमेश्वर
पृथ्वीराज
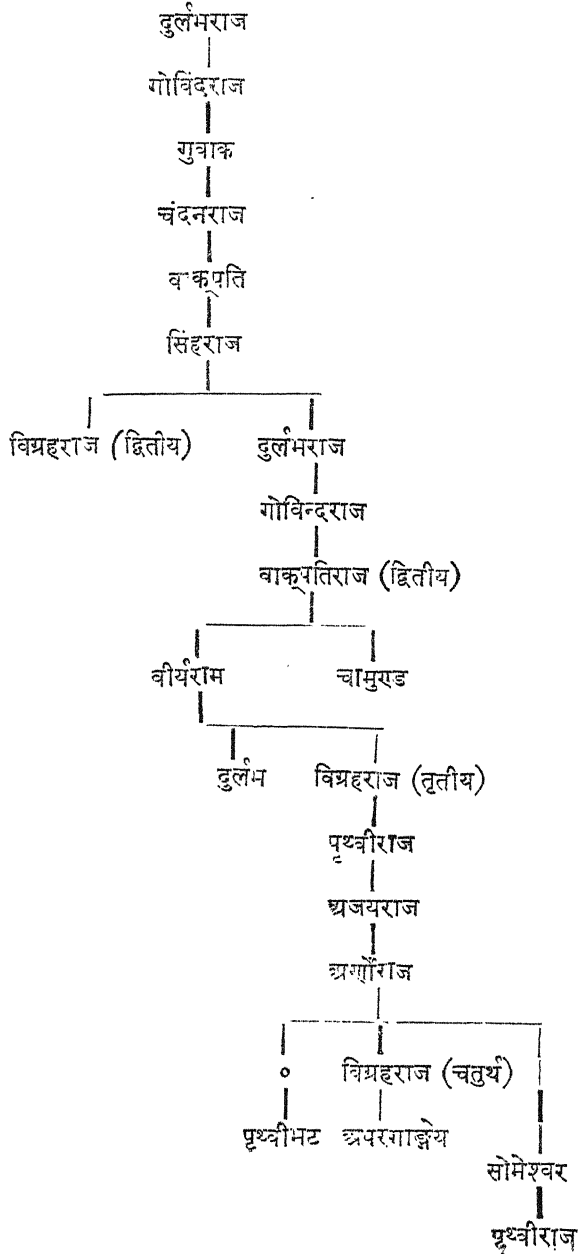
'पृथ्वीराज रासो' के बड़े-छोटे कई रूप मिलते हैं और उनमें तदनुसार वंशावली भी बड़ी-छोटी मिलती है। कहा जा सकता है कि 'रासो' के इन विभिन्न रूपों में से जो सबसे छोटा है, वही उसका मूल रूप होगा और उत्तरोत्तर जो बड़े रूप हैं वे अधिकाधिक प्रक्षिप्त होंगे। इसलिए उसके सबसे छोटे रूप में दी हुई वंशावली को ही यहाँ पर देखना उचित होगा। इस सबसे छोटे रूप को संपादित करके प्रकाशित किया जा रहा है।[1] उसके अनुसार पृथ्वीराज के पूर्व पुरुषों की वंशावली निम्नलिखित है :

चहुवान वंश की पृथ्वीराज तक की वंशावली के लिए सबसे प्रामाणिक साक्ष्य तीन शिला लेखों से प्राप्त है : एक है सं० १०३० वि० का हरस का,[2] दूसरा है सं० १२२६ वि० का वीजोल्याँ का[3] और तीसरा है सं० १२३९ का मदनपुर का[4]। 'पृथ्वीराज विजय' में जो वंशावली आती है, वह लगभग वही है जो इन शिलालेखों में आयी है, किंतु 'पृथ्वीराज रासो' में आयी हुई वंशावली इस वंशावली से बहुत भिन्न है। 'रासो' के सबसे छोटे रूप को वंशावली के सात नामों में

१. पृथ्वीराज रासो का लघुत्तम रूपान्तर—सं'पा० नरोत्तमदास स्वामी, 'राजस्थान भारती' भाग १, अंक १, पृ० १२-४५।

२. देखिए भांडारकर इंस्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इंडिया, पृ० १०।

३. वही ,, पृ० ६२।

४. वही ,, पृ० २२।

से तीन ही इन शिलालेखों की वंशावली में आते हैं—बीसल, आनल्ल और सोमेश्वर शेष उसमें नहीं मिलते हैं। कहना नहीं होगा कि 'रासो' के और बड़े पाठों में जो अतिरिक्त नाम आते हैं, वे भी इसी प्रकार भिन्न ठहरते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' की इस प्रकार की अनैतिहासिकता स्वभावतः हमें एक गहरी निराशा में डाल देती है। बूलर के समय तक 'रासो' का एक ही रूप ज्ञात था—जो पीछे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित किया गया। उसके बाद एक उससे छोटा रूप प्राप्त हुआ। आशा बँधी कि यह रूप 'रासो' की खोई हुइ ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को उसे पुनः प्राप्त करा सकेगा। किंतु ऐसा नहीं हुआ। तदनंतर एक उससे भी छोटा रूप 'रासो' का मिला। इससे भी उसी प्रकार आशा बँधी, किन्तु वह व्यर्थ गई। इधर 'रासो' का एक और भी छोटा रूप मिला है—जिसे सामान्यतः 'लघुतम' रूप कहा जाता है—और यह आशा बँधने लगी है कि कदाचित् इसके द्वारा 'रासो' की उस खोई हुई ऐतिहासिक प्रतिष्ठा को उसे प्राप्त कराया जा सकेगा, किन्तु यह भी एक दुराशा मात्र होगी, जैसा हमने ऊपर देखा है।

यह सब होते हुए भी जो बात आश्चर्य में डालने वाली है—और फिर भी जो अभी तक 'पृथ्वीराज रासो' के पारखियों की दृष्टि में नहीं आई है—वह यह है कि 'रासो' के लेखक को 'पृथ्वीराज विजय' का यथेष्ट ज्ञान था, और उसने 'विजय' की रचना का अपने काव्य में उल्लेख भी किया है। उसका यह उल्लेख कैमास-वध प्रकरण में हुआ है।[1] पूरा प्रसंग 'रासो' में इस प्रकार है।

कैमास पृथ्वीराज का मंत्री है—जैसा वह 'पृथ्वीराज विजय' में भी है। वह पृथ्वीराज की कर्नाट देश की एक दासी पर आसक्त हो जाता है, और एक दिन जब पृथ्वीराज आखेट के लिए बाहर जाता है, वह अवसर पाकर रात्रि के प्रारंभिक पहर में उस दासी के कक्ष में घुस जाता है। पट्टराज्ञी को जब इस बात की सूचना मिलती है, वह पृथ्वीराज को बुलवा भेजती है। पृथ्वीराज रात्रि में ही आकर कैमास का वध करता है, और उसको भूमि में गड़वा कर पुनः आखेट पर चला जाता है। सवेरा होने पर वह राजधानी लौटता है। यहीं पर[2] 'विजय' के सम्बन्ध का निम्नलिखित कथन आता है।

---

१. देखिए 'पृथ्वीराज रासो' नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, समय ५७।

२. पृथ्वीराज रासो (ना० प्र० स०) समय ५७; छंद १७१।

मझ्झ पहर पुच्छइ तिहि पंडिय।
कहि कवि 'विजय' साह जिह दंडिय।
सकल सूर बोलवि सभ मंडिय।
आसिष जाय दीध तब चंदिय।

अर्थात् प्रहर के मध्य में पंडित से वह (पृथ्वीराज) पूछता (कहता) है, "हे कवि, तुम (मेरी) विजय (का काव्य) कहो। जिस प्रकार मैंने (युद्ध में) शाह (शहाबुद्दीन) को दंडित किया है।" (तदनंतर) समस्त शूरों को बुलवाकर उसमें सभा माँडी (की) (जिसमें) जाकर तब चंडी भक्त (चंद) ने आशीर्वाद दिया।

इस उल्लेख में 'विजय' के सम्बंध की कुछ बातें अत्यन्त प्रकट हैं:

१. 'विजय' की रचना पृथ्वीराज के आदेश से हुई।

२. 'विजय' का कर्त्ता कोई पंडित कवि था।

३. 'विजय' में शाह (शहाबुद्दीन) पर प्राप्त पृथ्वीराज की विजय की कथा कही गई थी।

४. यह पंडित कवि चंद नहीं था, चंद तो इस प्रसंग में बाद में आता है। फिर 'रासो' भर में चंद 'भट्ट' है, पंडित' नहीं है।

'पृथ्वीराज विजय' की जो प्रति प्राप्त हुई है, वह पृथ्वीराज के राज्य-ग्रहण-प्रकरण के कुछ ही पीछे खंडित हो जाती है। उसके प्राप्त अंतिम अंशों में पृथ्वीराज की सभा में काश्मीर के कवि पंडित जयानक का आगमन होता है[1] और इसकी शैली काश्मीर काव्यों की शैली का अनुसरण करती है, इसलिए विद्वानों ने अनुमान किया है कि 'विजय' का कवि यही पंडित जयानक है। इस काव्य के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि पृथ्वीराज ने [विजय के] कवि का आदर किया था, और उसी ने यह काव्य लिखने के लिए उसे प्रेरित किया था[3] इसलिए भी कि इस ग्रंथ से कुछ उदाहरण सं० १२०० ई० के लगभग रचित होने वाले जयार्थ के

१. पृथ्वीराज विजय, सर्ग १२. छंद ६३ तथा ६८।

२. वही, प्रस्तावना पृ० २।

३. वही, सर्ग १. छंद ३१.३५।

द्वारा लिखित राजानक रुय्यक के 'अलंकार सर्वस्व' की 'अलंकार विमर्षिणी' नाम की टीका तथा उसी के द्वारा लिखित 'अलंकारोदाहरण' में दिये गए हैं, अनुमान किया गया है इसकी रचना पृथ्वीराज के जीवन-काल में (सन् ११९३ ई० में उसका देहांत हुआ) हुई होगी।[१] इसमें ११९१ ई० में प्राप्त शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की कथा कही गई थी, यह भी अनुमान किया गया है।[२] उपर्युक्त प्रथम तथा तृतीय अनुमानों की पुष्टि 'रासो' की ऊपर उद्धृत पंक्तियों से भलीभाँति हो जाती है। द्वितीय अनुमान बहुत युक्ति-संगत नहीं लगता है और 'रासो' से उसकी पुष्टि भी पूर्ण रूप से नहीं होती है। 'रासो' के प्राप्त समस्त रूपों के अनुसार शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज के विजय की घटना कैमास-वध के पूर्व आती है, तदनंतर कैमास-वध आता हैं, फिर संयोगिता के लिए पृथ्वीराज और जयचंद का संघर्ष आता है, जिसमें सफलता पृथ्वीराज को प्राप्त होती है, और अन्त में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का वह युद्ध आता है जिसमें पृथ्वीराज पराजित और बंदी होता है। पंडित को 'रासो' के अनुसार 'विजय' काव्य कहने का आदेश कैमास-वध प्रकरण में होता है और यह असंभव नहीं है कि उसने 'विजय' काव्य पृथ्वीराज के जीवन-काल में अर्थात् पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन के अंतिम युद्ध के पूर्व समाप्त कर लिया हो। किन्तु 'रासो' में पुनः किसी प्रसंग में पंडित से 'विजय' काव्य सुनने की या उसकी रचना के लिए उसे पुरस्कृत किए जाने का उल्लेख नहीं होता है। इसलिए 'रासो' के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि उसके कवि पंडित ने उसे उक्त अन्तिम युद्ध के पूर्व पूर्ण भी कर लिया था।

'पृथ्वीराज रासो' से 'पृथ्वीराज विजय' के संबंध में जो यह निश्चित प्रकाश पड़ता है, वह अत्यन्त महत्व का है, और इस प्रकार के लिए हमें 'रासो' के कवि का अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। यहाँ पर प्रश्न यह हो सकता है कि जब 'रासो' के कवि को 'विजय' का ऐसा निकट का परिचय था, तो 'रासो' के समस्त रूपों में हमें—अन्य अनैतिहासिक उल्लेखों को यदि छोड़ भी दिया जाए—ऐसे उल्लेख क्यों मिलते हैं जो 'विजय' के विरुद्ध जाते है? इस प्रश्न का एक ही उत्तर सम्भव हैं, और वह यह कि 'रासो' के प्राप्त विभिन्न रूपों में से कोई भी प्रक्षेप-मुक्त नहीं है, और अब भी हमें 'रासो' के उस मूल रूप की खोज करनी चाहिए जो इस प्रकार के

---

१. पृथ्वीराज विजय, प्रस्तावना, पृ० २।

२. वही, पृ० २।

प्रक्षेपों से मुक्त हो। 'विजय' के उपर्युक्त उल्लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि 'रासो' अपने मूल रूप में निरा 'भट्ट भणंत' नहीं था, जैसा प्रायः समझा जाता है; वह एक ऐसे जिम्मेदार कवि की कृति था, जो भले ही कथानायक का सम सामयिक न रहा हो पर जिसने उसकी प्राप्त जीवन-गाथा से परिचित होने का यत्न किया था, और उसकी सबसे अधिक पूर्ण और प्रामाणिक जीवन कथा 'पृथ्वीराज विजय' से जो भलीभाँति परिचित था। 'रासो' का यह मूल रूप किस प्रकार पुनः प्राप्त किया जा सकता है, यह एक भिन्न विषय है, जिस पर आशा है कि फिर कभी विचार किया जा सकेगा।

'सुर्जनचरित महाकाव्य' और 'पृथ्वीराज रासो'

चंद्रशेखरकृत 'सुर्जनचरित महाकाव्य'[1] की रचना अकबर के समकालीन और उसके अधीनस्थ हाड़ा राय सुर्जन की प्रेरणा से प्रारम्भ हुई थी,[2] किन्तु उसकी समाप्ति उनके उत्तराधिकारी राय भोज के समय में हुई थी।[3] कवि ने ग्रन्थ का रचना-काल नहीं दिया है, किन्तु इसमें उसने राय सुर्जन के देहांतोपरान्त राय भोज के राज्यारोहण का वर्णन मात्र किया है, उसके शासन-काल की घटनाओं का कोई विवरण नहीं दिया गया है, इसलिए समझना चाहिए कि ग्रंथ उसके राज्यारोहण के कुछ ही बाद समाप्त हुआ होगा। 'आईन-ए-अकबरी' में अकबर के शासन से सम्बद्ध व्यक्तियों की नामावली देते हुए राय सुर्जन (संख्या ९६) तथा राजा भोज (संख्या १७५) दोनों के नाम दिये गए हैं और राय सुर्जन के सम्बन्ध में 'आईन-ए-अकबरी' के योग्य संपादक ने टिप्पणी देते हुए लिखा है कि 'तबकात-ए-अकबरी' (रचना-काल १००१ हि०-१६४६ वि०) से स्पष्ट है कि राय सुर्जन सं० १६४६ वि० के कुछ पूर्व ही दिवंगत हो चुका था।[4]

राय सुर्जन के एक पूर्वज होने के नाते इसमें चौहान पृथ्वीराज का भी वृत्त आया है। यह रचना के दसवें सर्ग में है। नीचे इस सर्ग के श्लोकों का उल्लेख करते हुए उस वृत्त का सार दिया जा रहा है—

श्लोक १-१० : गंगदेव का पुत्र सोमेश्वर हुआ जिसने कुल परम्परागत राज्य का शासन किया। सोमेश्वर ने कुंतलेश्वर की पुत्री कर्पूरदेवी से विवाह किया और कर्पूरदेवी से उसके दो पुत्र पृथ्वीराज तथा माणिक्यराज हुए। पिता के दिये हुए राज्य को आपस में बाँट कर श्रेष्ठ बाहुबल से दोनों भाइयो ने शासन किया। पृथ्वीराज ने अपने पराक्रम से राज्य का विस्तार किया।

---

१. सुर्जनचरित महाकाव्य, हिन्दी अनुवाद सहित—सपादक और प्रकाशक डॉ० चन्द्रधर शर्मा, प्राध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९५२।

२. वही, सर्ग १. श्लोक ७, तथा २०.२४।

३. वही, २०. २२।

४. आईन-ए-अकबरी, सम्पादक एच० ब्लॉचमैन, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, पृ० ४००।

११-५२ : एक दिन जब पृथ्वीराज नगर के बाहर एक उद्यान में था, कान्यकुब्ज से कोई महिला आकर पृथ्वीराज से मिली और कान्यकुब्जेश्वर की पुत्री कांतिमती के सौन्दर्य की प्रशंसा करने के अनंतर उससे कहने लगी कि कांतिमती पिता के चरणों से उसका हाल सुनकर उस पर अनुरक्त हो चुकी थी और उसने एक रात स्वप्न में एक सुन्दर पुरुष को देखा था, तब से वह सर्वथा काम के वश में हो रही थी। उन्हीं दिनों उसने यह भी सुना था कि कान्यकुब्जेश्वर उसे और किसी से ब्याहना चाहते थे, इससे वह बहुत व्यथित थी और इसीलिए उसने पृथ्वीराज के पास संदेश लेकर उसे भेजा था। यह सुनकर पृथ्वीराज ने कहा कि वह उसके गुणों को बार-बार सुन चुका था, और उसके इस संताप को दूर करने का उपाय अवश्य करने वाला था। दूती यह आश्वासन लेकर चली गई।

५३-११२ : इसके अनंतर अपने बंदी को आगे कर पृथ्वीराज कान्यकुब्ज गया। वेश बदलकर और १५० सामंतों को साथ लेकर उसने उस वैतालिक का अनुसरण किया। जयचंद की सभा में वह उस वैतालिक का पार्श्वचर बनकर रहता। वह प्रतिदिन घोड़े पर गंगातट का चक्कर लगाता। एक दिन चाँदनी रात में वह घोड़े को नदी में पानी पिला रहा था। घोड़े के मुख से निकलते हुए फेन की गंध से मछलियाँ जब ऊपर आईं, वह उन्हें अपने कंठहार के मोती निकाल निकाल कर चुगाने लगा। कान्यकुब्जेश्वर की कन्या ने उसका यह कृत्य देखा, तो उसे उसके सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता हुई। उस दासी ने, जिसने उसका संदेश पृथ्वीराज को पहुँचाया था, उसे पहचानकर बताया कि यह तो पृथ्वीराज ही था, और यदि उसे इस विषय में संदेह था तो वह उसकी परीक्षा कर सकती थी। यह सुनकर राजकुमारी ने मुक्तामाल देते हुए एक दासी को वहाँ भेजा। वह जाकर पृथ्वीराज के पीछे खड़ी हो गई। कंठहार के मोतियों के समाप्त होते ही राजा ने पीछे हाथ बढ़ाया तो दासी ने वह मुक्तामाल उसके हाथों पर रख दिया। जब वे बिना गूँथे हुए मोती भी समाप्त हो गए तब उस दासी ने अपना कंठहार उतार कर राजा के हाथों पर रखा। स्त्रियों के उस कंठभूषण को देखकर राजा विस्मित हुआ और पीछे मुड़कर देखा तो वह दासी वहाँ मिली। पूछने पर उसने बताया कि कान्यकुब्जेश्वर की कन्या की वह परिचारिका थी। राजा ने उससे कहा कि वह अपनी स्वामिनी से कुछ प्रहर और धैर्य रखने के लिए कहे, क्योंकि दूसरे दिन रात्रि में उसके हृदय को निश्चय हो जाता। दूसरे दिन रात्रि में वह राजकुमारी से मिला और उसने कहा कि वह

अपने सामंतों को बिना बताये यहाँ आया था, इसलिए उसे लौटना ही था और उनसे मिलकर वह पुनः आ सकता था। किन्तु राजकुमारी को भावी विरह से व्यथित देखकर उसने उसे अपने साथ ले लिया और घोड़े पर उसके साथ सवार होकर अपने शिविर को चला गया।

११३-१२८ : इस समय एक सामंत आकर कहने लगा कि पृथ्वीराज को नव-वधू के साथ दिल्ली के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए। जब तक वह चार योजन आगे जायेगा, वह शत्रु सेना को रोकेगा। एक दूसरे सामंत ने उसे छह गव्यूति (तीन योजन) आगे बढ़ाने की प्रतिज्ञा की। इसी प्रकार इंद्रप्रस्थ तक का सारा मार्ग सामंतों ने परस्पर बाँट लिया। तब तक शत्रु-सेना आ पहुँची थी। उसने पीछा किया, संघर्ष होते-होते पृथ्वीराज इन्द्रप्रस्थ पहुँच गया। जब तक पृथ्वीराज इन्द्र-प्रस्थ पहुँचा, उसके पराक्रमी वीरगण इने-गिने ही बच रहे थे। पृथ्वीराज से हार कर कान्यकुब्जेश्वर यमुना के जल में डूब मरा।

१२९-१३२ : दिग्विजय करके पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बाँधा। इक्कीस बार उसे बन्दी करके छोड़ा। किंतु उसने उपकार नहीं माना और छल-बल से एक युद्ध में पृथ्वीराज को बन्दी करके उसे अपने देश ले गया और वहाँ उसे नेत्र-हीन कर दिया।

१३३-१६८ : घूमता-फिरता पृथ्वीराज का मित्र चंद नामक बंदी भी वहाँ पहुँच गया और उसने पृथ्वीराज को प्रतिशोध के लिए प्रोत्साहित किया। राजा ने कहा उसके पास न सेना थी और न नेत्र थे; इसलिए प्रतिशोध लेना किस प्रकार संभव था? किंतु बंदी ने जब उसे उसके शब्दवेध कौशल का स्मरण कराया, पृथ्वीराज ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया। तदनन्तर वह बंदी यवनराज की सभा में गया और कुछ ही दिनों में उसके मंत्रियों का तथा उसका विश्वास उसने अपने विद्या-कौशल से प्राप्त कर लिया। किसी प्रसंग में एक दिन उसने कहा कि नेत्रहीन होते हुए भी पृथ्वीराज बाण द्वारा लोहे के कड़ाहों को वेध सकता था, और उसका यह कौशल दर्शनीय होता। यवनराज उसकी बातों में आ गया। एक सुवर्ण स्तंभ पर लोहे के कड़ाह रखे गए और पृथ्वीराज को बाण चलाने की आज्ञा हुई। तब बंदी ने कहा कि यवनराज के तीन बार स्वयं कहने पर वह लक्ष्यवेध करेगा। इस पर शहाबुद्दीन के मुख से बाण चलाने की आज्ञा के निकलते ही पृथ्वीराज का बाण छूटकर उसके तालुमूल से जा लगा

और यवनराज का प्राणांत हुआ। वहाँ हलचल देखकर बंदी ने राजा को घोड़े पर बिठाया और कुरु जांगल देश ले गया जहाँ पृथ्वी को यशपूर्ण करके राजा परलोक सिधारा।

'महाकाव्य' के लेखक ने यह नहीं बताया है कि पृथ्वीराज की उपर्युक्त कथा उसे कहाँ से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग में पहली विचारणीय बात यह है कि इस कथा का आधार क्या हो सकता है ? इस कथा में प्रतिशोध-प्रकरण में बंदी चंद का नाम आता है जिसके बारे में यह भी कहा गया है कि वह उसका मित्र था। चंद के 'पृथ्वीराजरासो' में जो कथा आती है, उससे उपर्युक्त कथा का पर्याप्त साम्य भी है यह सुगमता से देखा जा सकता है; और 'पृथ्वीराजरासो' 'सुर्जनचरित महाकाव्य' से काफी पहले की रचना है, यह इस बात से प्रमाणित हो चुका है कि उसके छंद पुराने जैन प्रबन्धों में मिलते हैं, जिनमें से एक की प्रति सं० १५२८ की है।[1] अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में यह कथा सीधे 'पृथ्वीराज रासो' से ली गई है, अथवा 'रासो' पर आधारित किसी रचना से।

नीचे उदाहरण के लिए 'रासो' से कुछ ऐसे छंद दिये जा रहे हैं जिनमें वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा में आये हैं[2] —

(१) तिहि पुत्तिय सुनि गन इतउ तात वचन तजि काज।
कइ बहि गगहि संचरउं कइ पानि गहउं प्रथीराज॥
(तुल० नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, सर्ग ५०, छंद २७)

(२) सुनत राइ अचरिज भयउ हियइ मन्यउ अनुराउ।
नृप वर अनि उर अंगमइ दैवहि अवर स भाउ॥
(तुल० वही, ५०.२८)

---

१. देखिए प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित : (१) 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह, चंद वरदाई और जल्ह का समय' नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सं० २०१२, अंक ०४, पृ० २१४ तथा (२) 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह और 'पृथ्वीराज रासो', वही, सं० २०१४, अंक २०, पृ० १।

२. छन्दों का पाठ लेखक द्वारा सपादित 'पृथ्वीराज रासो' से दिया जा रहा है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा; स्थल-निर्देश मात्र सुविधा के लिए काशी नागरीप्रचारिणी सभा के संस्करण से किया जा रहा है।

(३) चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थह।
जउ बोलउं न हथ्थु तुह मथ्थह।
जबइ राइ जानइ संमुह हुअ।
तब अंगमउं समर दुहुंनि भुअ॥
(तुल० वही, ५७.३१०)

(४) कनवज्जिय जयचंद चलउ ढिल्लियसुर पेषन।
चंद विरद्दिआ साथि बहुत सामंत सूर घन।
चहूआन राठवर जांति पुंडीर गुहिल्ला।
वडगूजर राठवर कुरुंभ जांगरा रोहिल्ला।
इत्ते सहित्त भुअपति चलउ उडी रेन किन्नउ तुमउ।
एकु एकु लष्ष बर लष्षघइ चले सथ्थ रजपुत्त सउ।
(तुल० वही, ६१.१०५)

(५) करिग देव दक्खिन नयर गंग तरंगह कुल्ल।
जल छंडइ अछ्छइ करह मीन चरित्तनु भुल्ल॥
(तुल० वही, ६१.११३६)

(६) भूलउ नृप तिहि रंग तहि जुध्ध विरुद्ध सहु।
भूगति मीननु मुत्ति लहंति जु लष्ष दहु।
होइ तुछ्छ तु तंमोर सरंत जु कंठ लहु।
वंक प्रवेस हसंत तु झरंत ज गंग महु॥
(तुल० वही, ६१.११५४)

(७) पंगुराइ सा पुत्तिय मुत्तिय थार भरि।
यो त्रिय जउ प्रथीराज न पुछ्छइ तोहि फिरि।
जउ इन लष्षन सब सहित विचार न सोइ करि।
हइ व्रत मोहि नृ जीव सु लेउं सजीव वरि॥
(तुल० वही, ६१.११७१)

(८) सुंदरि आइ स धाइ विचार न बोलइय।
जउ जल गंगह लोल प्रतीत प्रसंगु लिय।

कमलति कोमल पांनि कलिकुल अंगुलिय।
मनहु अध्य दुजदान सु अप्पति अंजुलिय॥
(तुल० वही, ६१.११७४)

(६) अपंति अंजुलीय दान जाज सोभ लग्गए।
मनउ अनंग रंग वस्य रंभ इंद पुज्जए।
जु पानि बाहु बार थक्कि थार मुत्ति वित्तए।
पुनेपि हथ्थ कंठ तोरि पोति पुंज अप्पए।
निरष्पि नयन टेरि वयन ता त्रिपत्ति चाहियं।
तरप्पि दासि पासि पंक (पक्क) संकियं न वाहियं।
अनेक (अनिक्क?) संग रंगरूप जूप जानि सुंदरी।
उछंग गंग सम्भिभ धुक्कि सर्गपत्ति अछ्छरी।
हउं अछ्छरी नरिंदु नाहि दासि गेह राय पंगुरे।
तास पुत्ति जंम छाडि ढिल्लि नाथ आदरे।
सा जंम सूर चाहुवान मान इंम जानए।
करेन केहरीन पीन इंदु मीन थानए।
प्रतष्पि हार जुध्ध धीर यो सु वीर संचही।
परंतु प्रान मानिनी चलंति देत गंठही।
सुनंत सूर अस्व फेरि तेजि ताम हंकियं।
मनउ दलिद्द रिध्धि पाय जाथ कंठ लग्गियं।
कनक कोटि अंग धात रास वास माल ची।
रहंत भउंर भौंर भौंर साह छत्र कांम ची।
सुधा सरोज सोज मंग अलक्क रंक हल्लए।
मनउ सयन्न फंद पासि काम केलि घल्लए।
करिस्य कांम कंकनं सुपानि बंध बंधए।
जु भावरी सषी सलज्ज रुंफ तुरंयं वज्जए।
आचारु चारु देव सव्व दोइ पष्प जंपही।
गंठि दिढ्ढ इक्क चित्त लोक लोक चंपही।
अनेक सुष्प सुष्प सीस जुध्ध साध लग्गियं।
सुकंत कंत अंत ता तमोरि मोरि अप्पियं॥
(तुल० वही, ६१.११७७-११८५)

(१०) मिले सव्व सामंत बोल मग्गहि त नरेसर।
अप्प मग्ग लग्गिअइ मग्ग रष्षिइ ति इक्क नर।
एक एक झूझंति दंति दंती ढंढोरइ।
जिके पंग राय म्लिच्छ मारि मारिक्कइ मोरइ।
हम बोल रहइ कलि अंतरि देहि स्वामि पारथ्थिअइ।
अरि असीइ लष्ष को अग्गमइ परषि राय सारथ्थिअइ॥
(तुल० वही, ६१.१५६१)

(११) वेद कोस हरसिंघ उभय त्रियत वड गुज्जर।
काम बान हर नयन निडर नीडर सोइ सुझ्झर।
छगन पटन पल्लानि कन्ह पंची दिगपालह।
अल्हन द्वादस सकल अचल विद्या गनि कालह।
सिंगार विंभ सलषह सुकथ लषन पाहार आहार सुउ।
इत्तनइ सूर झूझंति हौं ढिल्लिअपति प्रथिराज भउ॥
(तुल० वही, ६१.२४०३)

(१२) गहि चहुआंन नरिंद गयउ गज्जने साहि वरि।
सा ढिल्ली हयगय भंडार तेहितनय अप्पि धर।
वरस एक तिहि अध्व सुध्ध किन्हउ नयन्न विनु।
जंग जंम जुग अवरुध्ध जाइ प्रथिराज इक्क पिनु।
सुनत श्रवन्नतु धरि परउ हरि हरि हरि हरि देव सु कह।
तजि पुत्त मित्त माया सकल गहिग चद गजनेव रह॥
(तुल० वही, ६६.१६२६, ६७.१८)

(१३) अंपिहीन दोऊ भयउ तु चहु अंपिन चूक।
असुर वध्धु किम विन सुरह भइ सुर बंधउ अलूक।
(तुल० वही, ६७-४०५)

(१४) भयउ एक फुरमान एक बानह गुन संधउ।
सोइ सवद्द अरु बान अग्ग अग्गइ पल बंधउ।
भयउ बीअ फुरमान पंचि रष्पिअउ श्रवन पर।
तीअउ सवद सुनंत सुनउ सुरतान परउ धर।

लगि दसन रसन दस रुंधिअउ विहु कपाट बंधे सघन।
धरि परउ साहि षां पुक्करउ भयउ चंद राजहि मरन॥
(तुल० वही, ६७.५४६)

यदि सुर्जनचरित महाकाव्य' के विवरण और 'रासो' से ऊपर उद्धृत पंक्तियों को मिलावें तो देखेंगे कि साम्य प्रायः छोटे से छोटे विस्तारों तक में है। यथा—

(१) दोनों में पृथ्वीराज को यह समाचार मिलता है कि जयचंद की पुत्री उस पर अनुरक्त है और जयचन्द उसे किसी अन्य से ब्याहना चाहता है, इसलिए वह बहुत व्यथित है।

(२) दोनों में पृथ्वीराज अपने बंदी के साथ उसके अनुचर के वेश में कन्नौज जाता है और उसके साथ १०० या कुछ अधिक शूर-सामंत हैं।

(३) दोनों में ठीक एक ही प्रकार से जयचंद-पुत्री उसे गंगातट पर रात्रि में मछलियों को मोती चुगाते हुए देखती है और एक ही उपाय से इस बात का निश्चय करती है कि वह व्यक्ति पृथ्वीराज ही है।

(४) जयचंद-पुत्री का अपहरण वह दोनों में एक ही प्रकार से करता है।

(५) दोनों में एक ही समान यह योजना स्थिर होती है कि वह जयचंद-पुत्री को लेकर दिल्ली की ओर बढ़े और उसके सामंतगण एक-एक करके जयचंद की पीछा करने वाली सेना को रोकें। इस योजना का निर्वाह भी दोनों में एक ही सा होता है।

(६) दोनों में वह शहाबुद्दीन के साथ के अंतिम युद्ध में बंदी होता है और गज़नी ले जाया जाकर नेत्रविहीन किया जाता है।

(७) दोनों में एक ही प्रकार से चंद की युक्ति से पृथ्वीराज शहाबुद्दीन से प्रतिशोध लेने में कृतकार्य होता है।

अंतर दोनों में बहुत साधारण है और मुख्यतः इतना ही है कि—

(१) 'रासो' में पृथ्वीराज के जयचंद-पुत्री के अनुरक्त होने का समाचार मात्र मिलता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसकी एक दूती पृथ्वीराज से उसका संदेश लेकर मिलती है।

(२) 'रासो' में उस जयचंद-पुत्री का नाम संयोगिता है, और 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में कान्तिमती।

(३) 'रासो' में पृथ्वीराज जयचंद-पुत्री से पहचाने जाने पर ही जा मिलता है। यद्यपि उसे लिवा जाता है बाद में; 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वह उसे मिलता है, दूसरे दिन और उसी समय उसे लिवा जाता है।

(४) 'रासो' में पीछा करता हुआ जयचंद पृथ्वीराज के दिल्ली पहुँच जाने पर कन्नौज लौट जाता है। 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वह यमुना में डूब मरता है।

(५) 'रासो' में पृथ्वीराज ग़ज़नी में ही शाह-बध के अनंतर मृत्यु को प्राप्त होता है, 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में उसे चंद कुरु जांगल प्रदेश भगा ले आता है, जहाँ वह पीछे मृत्यु को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब हम इस अंतर पर विचार करते हैं तो लगता है कि ये अन्तर 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के रचयिता की कल्पना अथवा किन्हीं जनश्रुतियों के परिणाम हैं—जयचंद का यमुना में डूब मरना अथवा पृथ्वी-राज का ग़ज़नी से सकुशल कुरु जांगल लौट आना 'रासो' की पूर्वकल्पित दिशा में एक कदम आगे बढ़े हुए विस्तार मात्र प्रतीत होते हैं। ये किसी भी अन्य प्राप्त प्राचीन रचना में नहीं मिलते हैं, यह भी इस अनुमान की पुष्टि करता है। फलतः यह प्रकट है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार सीधा 'पृथ्वी-राज रासो' है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उप-र्युक्त कथा का आधार 'रासो' का कौन-सा पाठ है। 'रासो' के चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं—(१) लघुतम, जिसमें लगभग ४२० रूपक (छंद) हैं, (२) लघु, जिसमें लगभग १,१०० रूपक (छंद) हैं, (३) मध्यम, जिसमें लगभग ३,४०० रूपक (छंद) हैं, और (४) वृहत्, जिसमें लगभग १०,०० रूपक (छंद) है। इनमें से कौन सा पाठ 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का आधार हो सकता है?

इस प्रसंग में द्रष्टव्य यह है कि—

(१) 'रासो' के जो छन्द ऊपर उद्धृत हुए हैं, वे लघुतम से लेकर वृहत् तक 'रासो' के समस्त प्राप्त पाठों में समान रूप से पाए जाते हैं।

(२) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' का एक भी मुख्य विस्तार उपर्युक्त को छोड़-कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठों में न पाया जाता हो, और अन्तरवाले उपर्युक्त विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं मिलते हैं।

(३) ऐसे कोई भी प्रसंग या विस्तार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं हैं जो 'रासो' के लघुतम पाठ में न मिलते हों और उसके अन्य किसी पाठ में मिलते हों।

अंतिम विशेषता के उदाहरण में निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया ा सकता है, जो कि लघुतम पाठ को छोड़कर 'रासो' के समस्त पाठों में पाए जाते हैं।

(१) गुर्जराधिपति भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज का युद्ध।

(२) उसी के साथ-साथ हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज के एक सामंत धीरपुंडीर और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(४) शहाबुद्दीन-पृथ्वीरा के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से चित्तौड़ के रावल समरसी का सम्मिलित होना।

(५) उसी युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामंत जंबूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन से जा मिलना।

(६) हाहुलीराय हम्मीर के पास जाकर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने के लिये चंद का प्रयत्न करना।

ये प्रायः ऐसे प्रसंग या विस्तार हैं जो यदि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के लेखक के सामने होते तो उसके द्वारा सबके सब कदाचित् छोड़े न गए होते।

अतः यह स्पष्ट है कि उसकी उपर्युक्त कथा का आधार 'रासो' का लघुतम या उससे मिलता जुलता ही कोई पाठ हो सकता है।

अब विचारणीय यह है कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' के उपर्युक्त विवरण का आधारभूत 'रासो' का पाठ उसके प्राप्त लघुतम पाठ से भी किन्हीं बातों में तो लघुतर नहीं था ।

'सुर्जनचरित महाकाव्य' की उपर्युक्त कथा का 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ से तुलना करने पर निम्निलिखित बातें द्रष्टव्य ज्ञात होती हैं—

(१) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में कथा जयचंद-पुत्री कांतिमती के प्रेम-प्रसंग से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है ।

(२) उसमें पथ्वीराज के पूर्व-पुरुषों की जो नामावली आती है वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में मिलती है ।

(३) अनंगपाल तोंवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्त होने की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में आती है, वह भी 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं आता है ।

(४) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कैमास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में नहीं है, जो कि 'रासो' के प्रप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पाया जाता है ।

(५) 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पायी जाती हैं ।

असम्भव नहीं है कि इनमें से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षेप-क्रिया के कारण 'सुर्जनचरति महाकाव्य' में छोड़ दिये गए हों, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि उसकी कथा के आधारभूत 'रासो' के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हों । यह बात ठीक इसी प्रकार 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की समकालीन रचना 'आईन-ए-अकबरी' में भी दिखायी पड़ती है ।[1] इसलिए यह विषय गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है ।

१. देखिए 'आईन-ए अकबरी और पृथ्वीराज रासो' शीर्षक अध्याय।

इस सम्बन्ध में यह जान लेना उपयोगी होगा कि 'सुर्जनचरित महाकाव्य' की रचना सं० १६४६ के लगभग हुई थी और 'रासो' के प्राप्त सभी पाठों की प्रतियाँ उसके बाद की हैं : लघुतम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो धारणोज (गुजरात) की है, सं० १६६४ की है, लघु की प्राचीनतम प्राप्त प्रति जो बीकानेर की है, जहाँगीर के समकालीन किसी भागचंद के लिए लिखी गई थी, मध्यम की प्राचीनतम प्राप्त प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन की है और सं० १६६२ की लिखी है, वृहत् की प्राचीनतम प्राप्त प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, काशी है और सं० १७४७ की है।

'आईन-ए-अकबरी' और 'पृथ्वीराज रासो'

'आईन-ए-अकबरी' में दिल्ली का इतिहास देते हुए पृथ्वीराज के विषय में निम्नलिखित विवरण दिया गया है—

"विक्रमीय सं० ४२६ (३७२ ई०) में तोंवर कुल का अनंगपाल न्याय पूर्वक राज्य करता था और उसने दिल्ली की स्थापना की। उसी चान्द्र-सौर वर्ष के सं० ८४८ (७६१ ई०) में उस प्रसिद्ध नगर के निकट पृथ्वीराज तोंवर और बीलदेव (बीसल देव) चौहान में घमासान युद्ध हुआ और शासन बाद वाले कुल के हाथों में चला गया। राजा पिथौरा (पृथ्वीराज) के राज्य-काल में सुल्तान मुईज़ुद्दीन साम ने हिंदुस्तान पर अनेक आक्रमण किये, जिनमें उसे उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। हिंदू इतिहासों का कथन है कि राजा ने सुल्तान से सात बार युद्ध किये और उसे पराजित किया। ५८८ हि० (११६२ ई०) में थानेसर के पास आठवाँ युद्ध हुआ और राजा बंदी हुआ। एक सौ प्रसिद्ध योद्धा (कहा जाता है) उसके प्रधान अनुयायी थे। वे अलग-अलग 'सामंत' कहलाते थे और उनके असाधारण शौर्य का न तो वर्णन हो सकता है और न अनुभव या तर्क से उसका समाधान किया जा सकता है। कहा जाता है कि इस युद्ध में इनमें से कोई नहीं था; राजा भोग-विलास में अपने महल में ही पड़ा काम-केलि में समय नष्ट करता रहा तथा उसने न राज्य के शासन पर ध्यान दिया और न अपनी सेना की सुख-सुविधा पर।

कथा इस प्रकार कही जाती है कि राजा जयचंद राठौर, जो हिंदुस्तान का सर्वोच्च शासक था, कन्नौज में राज्य कर रहा था; दूसरे राजा किसी न किसी मात्रा में उसकी वश्यता मानते थे और वह इतना उदार था कि ईरान और तूरान के अनेक निवासी उसकी सेवा में थे। उसने राजसूय यज्ञ करने की घोषणा की और उसकी तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी। इस यज्ञ का एक नियम यह है कि निम्नकोटि की सेवाएँ भी राजागण के ही द्वारा प्रतिपादित होती हैं, यहाँ तक कि राजकीय भोजनालय के बर्तन माँजने-धोने और आग सुलगाने तक के जैसे कार्य भी उनके कर्त्तव्यों

के अंग होते हैं। इसी प्रकार उसने वचन दिया कि वह आगत राजाओं में से सर्वाधिक शूर राजा को अपनी सुन्दरी कन्या भी देगा।

राजा पिथौरा ने यज्ञ में उपस्थित होने का निश्चय किया था, किंतु उसकी सभा के किसी सदस्य के इस आकस्मिक कथन ने कि जब तक चौहान कुल का साम्राज्य था, राजसूय किसी राठौर द्वारा किया जाना विहित नहीं था, पृथ्वीराज के कुलाभिमान को उद्दीप्त कर दिया और वह रुक गया। राजा जयचंद ने उसके विरुद्ध सेना भेजने की सोची, किन्तु उसके मंत्रियों ने युद्धमें समय अधिक लगने की संभावना और (राजसूय) सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान से उसे इस विचार से विरत किया। यज्ञ को विधि-पूर्वक सम्पन्न करने के उद्देश्य से राजा पिथौरा की एक स्वर्ण-प्रतिमा बनायी गई और वह दरबान के रूप में राजद्वार पर रख दी गई।

इस समाचार से क्रुद्ध हो कर राजा पिथौरा छद्मवेष में ५०० चुने हुए योद्धाओं के साथ निकल पड़ा और (राजसूय) सभा में अकस्मात् पहुँचकर अनेक को अपनी तलवार से समाप्त करते हुए वह उस प्रतिमा को शीघ्रता के साथ उठा ले गया। जयचंद की कन्या, जिसका वाग्दान एक अन्य राजा से हो चुका था, पृथ्वीराज के इस शौर्य प्रदर्शन का समाचार सुनकर उस पर अनुरक्त हो गई, और उसने वाग्दत्त राजा से विवाह करना अस्वीकार कर दिया। उसके पिता (जयचन्द) ने इस आचरण पर क्रुद्ध होकर उसे राज-भवन से निकाल दिया और एक अन्य भवन में भेज दिया।

इस समाचार से व्यग्र होकर पिथौरा उससे विवाह करने का निश्चय करके लौट पड़ा, और योजना यह बनाई गई कि चाँदा, एक भाट, जो कि चारण-कला में दक्ष था, जयचंद की सभा में उसके गुण-गान के बहाने पहुँचे और राजा (पृथ्वीराज) स्वयं अपने कुछ चुने हुए अनुयायिओं के साथ उसके अनुचर के वेष में उसके साथ जाए। प्रेम ने उसकी आकांक्षा को क्रियात्मक रूप प्रदान किया। इस कौशलपूर्ण उपाय तथा वीरता के परिणामस्वरूप उसने अपने हृदय की कामना (जयचंद-पुत्री) का अपहरण किया, और बलवीर्य तथा शौर्य के अद्भुत प्रदर्शन के अनंतर अपने राज्य में वापस पहुँच गया।

[इस प्रत्यावर्तन में] उसके (उपर्युक्त) सौ सामंत विभिन्न छद्मवेषों में उसके साथ थे। एक के बाद दूसरे ने उसके भागने में उसकी रक्षा की और पीछा करने

वालों से वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए प्राण दिये। गोविंदराय गहलोत ने सर्व प्रथम सामना किया और वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग किया। शत्रु के सात हजार सैनिक उसके समक्ष धराशायी हुए। तदनंतर नरसिंह देव, चाँदा, पुंडीर, सार्दूल सोलंकी तथा अपने दो भाइयों के साथ पाल्हन देव कछवाहा ने प्रथम दिन के युद्ध में अद्भुत शौर्य-प्रदर्शन करते हुए मँहगे मूल्यों में प्राण दिए, और ये सभी योद्धा उस प्रत्यावर्तन में समाप्त हुए। चाँदा तथा अपने दो भाइयों के साथ राजा अपनी नव वधू को लेकर जगत् को आश्चर्य-मग्न करता हुआ दिल्ली पहुँच गया।

दुर्भाग्यवशात् राजा अपनी इस सुन्दरी स्त्री के प्रेम में ऐसा लिप्त हो गया कि और सब काम-काज छोड़ बैठा। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर ऊपर वर्णित घटनाओं के कारण सुल्तान शहाबुद्दीन ने राजा जयचंद से मैत्री स्थापित कर ली, और एक सेना इकट्ठी कर इस देश पर आक्रमण कर दिया और बहुत-से स्थानों को हस्तगत कर लिया। किन्तु किसी को कुछ बोलने तक का साहस न हुआ, उसका प्रतिकार करना तो दूर की बात थी। अन्त में मुख्य सामंतों ने सभा करके राजभवन के सप्त-द्वार से चाँदा को भेजा, जिसने रनिवास में पहुँच कर अपने कथनों से राजा के मन में कुछ क्षोभ उत्पन्न किया। किन्तु राजा अपनी पूर्ववर्ती विजयों के अभिमान में युद्ध में एक छोटी ही सेना लेकर गया। उसके वीर योद्धा अब नहीं थे, [जिसके कारण] उसके राज्य की पुरानी धाक जाती रही थी, और जयचंद, जो उसका पहले का सहयोगी था, अपनी पुरानी नीति बदलकर शत्रु के पक्ष में हो गया था, [फलतः] राजा उस युद्ध में बंदी हुआ और सुल्तान के द्वारा ग़ज़नी ले जाया गया।

चंद अपनी स्वामिभक्ति के कारण अविलंब ग़ज़नी गया, सुल्तान की सेवा में नियुक्त हो गया और उसका विश्वास-पात्र बन गया। प्रयत्नों से उसने राजा का पता लगा लिया और बंदीगृह में पहुँचकर उसे सान्त्वना दी। उसने सुझाया कि वह सुल्तान से उसके धनुर्विद्या के कौशल की प्रशंसा करेगा और जब वह उसके इस कौशल को देखने के लिए तैयार होगा, राजा को उस अवसर से लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त हो जाएगा। यह प्रस्ताव मान लिया गया और राजा ने सुल्तान को एक बाण से विद्ध कर दिया। मुसलमान राजा और चाँदा पर टूट पड़े और उन्होंने उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

फ़ारसी इतिहासकार एक भिन्न विवरण देते हैं और कहते हैं कि राजा युद्ध में मारा गया।"[1]

'आईन-ए-अकबरी' के लेखक ने यह नहीं बताया है कि उपर्युक्त कथा उसे किस हिन्दू इतिहास से प्राप्त हुई, अतः इस प्रसंग में पहली विचारणीय बात यह है कि इस कथा का आधार क्या हो सकता है। इस विवरण में 'चाँदा' नामक भाट का उल्लेख हुआ है। प्रकट है कि वह 'चंद' है। चंद के 'पृथ्वीराज रासो' में जो कथा आती है उससे उपर्युक्त विवरण में पर्याप्त साम्य भी है, यह भी सुगमता से देखा जा सकता है; और 'पृथ्वीराज रासो' 'आईन-ए-अकबरी' से काफी पहले की रचना है यह इस बात से प्रमाणित हो चुका है कि उसके कुछ छंद पुराने जैन प्रबंध-संग्रहों में मिलते हैं जिनमें से एक की प्रति सं० १५२८ की है[2]; अतः प्रश्न वास्तव में इतना ही रह जाता है कि 'आईन-ए-अकबरी' में यह कथा सीधे 'पृथ्वीराज रासो' से ली गई है, अथवा 'रासो' पर आधारित किसी रचना से।

नीचे उदाहरण के लिए 'रासो' से कुछ ऐसी पंक्तियाँ दी जा रही हैं जिनमें वे ही कथा-विस्तार मिलते हैं जो 'आईन-ए-अकबरी' के उर्युक्त विवरण में आए हैं[3]—

(१) पहु पंग राउ राजसू जग्गु।
आरम्भ रंभ कीनउ सुरग्ग।
जित्तिआ राउ सब सिंधु आर।
मेलिया कंठ जिम मेत्तिहार।
जोगिनी पुरेस सुनि भयउ षेद।
आवइ न माल मझ्झ इह अभेद।

---

१. 'आईन-ए-अकबरी', द्वितीय भाग (एच० एस० जैरेट द्वारा अनूदित) संशोधित संस्करण, पृ० ३०५-३०७ का हिंदी रूपांतर है।

२. देखिए प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखितः (१) 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह, चंद बरदाई और जल्ह का समय', नागरी प्रचारणीय पत्रिका, सम्वत् २०१२, अंक ३-४, पृ० २३४, तथा (२) 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह और पृथ्वीराज रासो,' वही, सं० २०१४, अंक २-३, पृ० १।

३. छन्दों का यह पाठ लेखक द्वारा सम्पादित 'पृथ्वीराज रासो' से दिया गया है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा; स्थल-निर्देश मात्र नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संस्करण से सुविधा के लिए किया गया है

मोकले दूत तब ही दिसाइ।
असमथ्थ सेव किम भूमि थाइ।
बंधू समेत सामंत सथ्थ।
उत्तरे आनि दरबार तथ्थ।
बोलउ न वयण प्रथिराज ताहि।
संकुरीउ सिध गुरजननि चाहि।
उच्चरउ गुरुअ गोयंद राज।
कलि मझिझ जग्गु को करइ आज।......
कलि मझिझ जग्गु को करण जोग।
बिग्गरइ तु बहु विधि हसइ लोग।
दलद्दव्व गव्व तुम अप्रमांन।
बोलहु त बोल देवन समांन।
तुम जानउ पित्री हइ न कोइ।
निव्वीर पुहवि कबहूँ न होइ।......
सइंभरि सकोप सोमेस पुत्त।
दानवति रूव अवतार धुत्त।
तिहि कंधि सीस किम जग्य होइ।
जु प्रिथिमी नहीं चहुआन कोइ।......
बोल्यउ सुमंत परधान तव्व।
कनवज्ज नाथ करि जग्गु अव्व।
जब लग्गि गहिहि चहुआन चाहि।
तब लग्गि तांह टलि काल जाहि।
ये आससुद्द नृप करहिं सेव।
उच्चरहु कामु सो करहुँ देव।
सोवन्न प्रतिमा प्रथीराज वांन।
थापउ जु पोलि जम दरब्बांन।
सइंवरह संग अरु जग्गु काज।
विद्दुजन बोलि दिन धरहु आज।......
(नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण, सर्ग ४८, छंद ४६-७४)।

(२) संवादेव विनोदेव देवदेवेन रच्यते।
अन्यप्राणेऽथवाप्राणे प्राणेश दिल्लीश्वरः॥
(तुल० वही, ५०·४६)

(३) तव भुकित राइ गंगातटत रचि पचि उच्च अवास।
चाहि गहऊँ चहुआन तकु जु मिट्टइ बाला आस ॥
(तुल० वही, ५०.५६)

(४) चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थहं।
जउ बोलउं त हथ्थु तुह मथ्थहं।
जवह राइ जानइ संमुह हुअ।
तव अंगमउं समर दुहुवि भुअ।
(तुल० वही, ५७. ३१०)

(५) कनवज्जिय जयचंद चलउ ढिल्लियसुर पेषन।
चंद विरदिआ साथि बहुत सामंत सूर घन।
चहूआन राठवर जाति पुंडीर गुहिल्ला।
वडगूजर राठवर कुरंभ जांगरा रोहिल्ला।
इत्ते सहित्त भुअपति चलउ उडी रेन किन्नउ नुभउ।
एकु एकु लष्ष वर लष्षवइ चले सथ्थ रजपुत्त सउ ॥
(तुल० वही, ६१. १०५)

(६) उभय सहस हय गय परित निसि निग्रह गत भांन।
सात सहस असि मीर हणि थल विटउ चहुआंन ॥
(तुल० वही, ६१. १५३४)

(७) परउ गंजि गहिलुत्त नाम गोविंद राज वर।
दाहिम्मउ नरसिंघ परउ नागवर जास धर।
परउ चंद पुंडीर चंद पेक्खो मारंतउ।
सोलंकी सारंग परउ असिवर भारंतउ।
कूरंभराय पालन्नदेउ बंधव तीन निघट्टिवा।
कनवज्ज राडि पहिलइ दिवसि सउ मह सत्त निघट्टिया।
(तुल० वही, ६१. १५३३)

(८) मिले सब्ब सामंत बोलु मग्गहि त नरेसर।
अप्प मग्ग लग्गिअइ मग्ग रष्षिइ ति इक्क भर।

एक एक भूझंति दंति दंती ढंढोरइ।
जिके पंग राय भिच्च मारि मारिक्कइ मोरइ।
हम बोल रहइ कलि अंतरि देति स्वामि पारथ्थिअइ।
अरि असीइ लषष को अंगमइ परणि राय सार्थ्थिअइ॥
(तुल० वही, ६१. १५६१)

(६) इह विधि विलसि विलास असार सुसार किअ।
दइ सुष जोग संजोगि सोइ प्रथिराज जिय।
अह निसि सुध्धि न जानहि माननि प्रौढ रति।
गुरु बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति॥
(तुल० वही, ६१. २५४५)

(१०) कग्गरु अप्पिअ राजकर मुष जपइ आ वत्त।
गोरी रत्तउ तुव धरा तुं गोरी अनुरत्त॥
(तुल० वही, ६६. २३७)

(११) इह कहि दासी अप्पि कर लिपि जु दिअउ कवि चंदु।
पहली आवलि वंचि करि हिरि धर जाय नरिंदु॥
(तुल० वही, ६६. २४२)

(१२) भयउ एक फुरमान एक बानह गुन संधउ।
सोइ सबद अरु बांन अग्ग अग्गइ बल बंधउ।
भयउ बीअ फुरमान पंचि रषिअउ श्रवन पर।
तीअउ सबद सुनंत सुनउ सुरतान पाउ धर।
लगि दसन रसन दस रुंधिअउ विहु कपाट बंधे सबल।
धरि परउ साहि षां पुक्करउ भयउ चंद राजहि मरन॥
(तुल० वही, ६७. ५४६)

यदि 'आईन-ए-अकबरी' के विवरण और 'रासो' में ऊपर उद्धृत पंक्तियों को मिलाएँ तो देखेंगे कि साम्य प्रायः छोटे से छोटे विस्तारों तक में है—

(१) जयचन्द के राजसूय के साथ ही उसकी कन्या के स्वयंवर का आयोजन दोनों में एक समान हुआ है।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि सभा के एक सभ्य के कथन के कारण पृथ्वीराज उस राजसूय में सहयोग देने से रुक गया, 'रासो' में इस सभ्य का नाम भी दिया हुआ है—गोविंद राज।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' में कहा गया है कि जयचन्द पृथ्वीराज के विरुद्ध सेना भेजने की बात सोच रहा था, किन्तु उसके मंत्रियों ने पृथ्वीराज साथ युद्ध में अधिक समय लगने की संभावना तथा [राजसूय] सभा की तिथि की सन्निकटता के ध्यान से उसे इस विचार से विरत किया; ठीक यही बात 'रासो' में भी कही गई है।

(४) दरबान के रूप में पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा की स्थापना की बात दोनों में समान रूप में कही गई है।

(५) जयचन्द की कन्या ने दोनों में पृथ्वीराज पर अनुरक्त होकर किसी अन्य से विवाह करना स्वीकार कर दिया है, और इसलिए दोनों में उसे राज-भवन से निकाल कर एक अन्य भवन में रख दिया गया है।

(६) चंद के साथ पृथ्वीराज के उसके अनुचर के वेष में कन्नौज जाने की योजना दोनों में हुई है।

(७) कन्नौज के पृथ्वीराज के प्रत्यावर्तन की योजना दोनों में एक-सी है।

(८) प्रथम दिन के युद्ध में गिरे हुए सामंतों की सूची दोनों में सर्वथा एक है, और समस्त नाम भी एक ही क्रम से दोनों में आते हैं। 'सारंग' का सादूंल' अरबी-फ़ारसी लिपि 'गाफ' और 'लाम' के साम्य के कारण हुआ प्रतीत होता है।

(९) पृथ्वीराज का जयचंद-पुत्री के प्रेम में लिप्त होकर राजकीय कार्यों की उपेक्षा करना और चंद का उसको उद्बुद्ध करना भी दोनों में प्रायः समान हैं।

(१०) चंद का ग़ज़नी जाना और युक्ति से पृथ्वीराज के द्वारा शहाबुद्दीन का वध कराना भी दोनों में एक समान हैं।

(११) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन-वध के अनंतर राजा तथा चंद दोनों को मार डाला गया है; 'रासो' में शब्दावली है—

भयउ चंद राजहि मरन ।

जिसका वास्तविक अर्थ कदाचित् है 'चंद कहता है कि राजा का मरण हुआ', किन्तु एक दूसरा अर्थ भी लिया जा सकता है—जैसे कि 'आईन-ए-अकबरी' में आता है—'चंद और राजा का मरण हुआ ।'

अंतर दोनों में बहुत साधारण है, और मुख्यतः इतना ही है कि—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार जयचंद की कन्या पृथ्वीराज पर अनुरक्त होने के पूर्व किसी अन्य की वाग्दत्ता है; 'रासो' में जयचन्द उसे किसी अन्य को देना भर चाहता है ।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार पृथ्वीराज कन्नौज दो बार जाता है : एक बार तो वह ५०० चुने हुए योद्धाओं के साथ जाकर अपनी स्वर्ण प्रतिमा उठा लाता है, और दूसरी बार जाकर जयचंद-पुत्री का अपहरण करता है, जब कि 'रासो' में वह एक ही बार कन्नौज जाता है और केवल जयचंद-पुत्री का अपहरण करता है ।

(३) 'आईन-ए-अकबरी' के अनुसार शहाबुद्दीन पृथ्वीराज पर किये गए अंतिम आक्रमण के पूर्व जयचंद से मैत्री स्थापित करता है, जो कि 'रासो' में नहीं है ।

उपर्युक्त सन्निकट साम्य की पृष्ठभूमि में जब हम इस अन्तर पर विचार करते हैं तो लगता है कि ये अतिरिक्त विस्तार 'आईन-ए-अकबरी' में या तो कल्पित हैं अथवा अनुश्रुति के आधार पर उस में रख लिये गए हैं, किसी भी अन्य प्राप्त प्राचीन रचना में इन में से कोई नहीं मिलता है, यह इसी अनुमान की पुष्टि करता है । फलतः यह प्रकट है कि 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण का आधार सीधा 'पृथ्वीराज रासो' है ।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरणों का आधार 'रासो' का कौन सा पाठ है । 'रासो' के चार मुख्य पाठ प्राप्त हैं जो उत्तरोत्तर अपने से बड़े में बहुत-कुछ अन्तर्भुक्त हैं—(१) लघुतम, जिसमें लगभग ४२० रूपक (छंद) हैं, (२) लघु, जिसमें लगभग १,१०० रूपक (छंद) हैं, (३) मध्यम, जिसमें लगभग ३,४०० रूपक (छंद) हैं, और (४) बृहद्, जिसमें लगभग ११,०० रूपक (छंद) हैं । इनमें से कौन-सा पाठ 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण का आधार हो सकता है ?

इस प्रसंग में द्रष्टव्य यह है कि—

(१) 'रासो' के जो छंद ऊपर उद्धृत हुए हैं वे लघुतम से लेकर वृहत् पाठ तक 'रासो' के समस्त प्राप्त पाठों में समान रूप से पाये जाते हैं।

(२) 'आईन-ए-अकबरी' का एक भी मुख्य विस्तार उपर्युक्त तीन को छोड़-कर ऐसा नहीं है जो 'रासो' के समस्त पाठों में न पाया जाता हो और ये तीन विस्तार 'रासो' के किसी भी पाठ में नहीं मिलते हैं।

(३) ऐसे कोई भी प्रसंग या विस्तार 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं हैं जो 'रासो' के लघुतम में पाठ न मिलते हों और उसके अन्य किसी पाठ में मिलते हों।

अंतिम विशेषता के उदाहरण में निम्नलिखित प्रसंगों और विस्तारों को लिया जा सकता है जो कि लघुतम पाठ को छोड़ कर 'रासो' के समस्त पाठों में पाये जाते हैं—

(१) गुर्जराधिपति भीम चालुक्य और पृथ्वीराज युद्ध।

(२) उसी के साथ हुआ पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन युद्ध।

(३) शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज के एक सामंत धीर पुंडीर और शहाबुद्दीन का युद्ध।

(४) शहाबुद्दीन पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से चितौर के रावल समरसी का सम्मिलित होना।

(५) उसी युद्ध में पृथ्वीराज के एक सामंत जंबूपति हाहुलीराय हम्मीर का शहाबुद्दीन से जा मिलना।

(६) हाहुली राय हम्मीर के पास जा कर उसे पृथ्वीराज के पक्ष में लाने के लिए चंद का प्रयत्न करना।

ये प्रायः ऐसे प्रसंग या विस्तार हैं जो यदि 'आईन-ए-अकबरी' के लेखक के सामने होते तो सब के सब उसके द्वारा कदाचित् न छोड़े गए होते। अतः यह स्पष्ट है कि उसके उपर्युक्त विवरण का आधार 'रासो' का लघुतम या उससे मिलता-जुलता ही कोई पाठ हो सकता है।

अब विचारणीय यह है कि 'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण का आधार-भूत 'रासो' का यह पाठ उसके वर्तमान लघुतम पाठ से भी किन्हीं बातों में तो लघुतर नहीं था।

'आईन-ए-अकबरी' के उपर्युक्त विवरण को 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ से तुलना करने पर निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य ज्ञात होती हैं—

(१) 'आईन-ए-अकबरी' में कथा जयचंद के राजसूय से प्रारम्भ होती है, पृथ्वीराज का कोई वृत्त इसके पूर्व नहीं आता है।

(२) उसमें पृथ्वीराज के पूर्वपुरुषों के विषय में कोई उल्लेख तक नहीं होता है, और उसमें अन्यत्र चहुवान कुल के शासकों की जो नामावली आती है[1], वह उस नामावली से बहुत भिन्न है जो 'रासो' के लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में मिलती है।

(३) अनंगपाल तोंवर द्वारा पृथ्वीराज को दिल्ली प्राप्ति की जो बात 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में आती है, वह भी 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं आती है।

(४) पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य कइमास अथवा उसके वध का कोई उल्लेख 'आईन-ए-अकबरी' में नहीं आता है, जो कि 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पाया जाता है।

(५) 'आईन-ए-अकबरी' में वे तिथियाँ भी नहीं आती हैं जो 'रासो' के प्राप्त लघुतम पाठ तक उसके समस्त पाठों में पायी जाती हैं।

असंभव नहीं है कि इनमें से कुछ प्रसंग या विस्तार संक्षिप्तता के कारण 'आईन-ए-अकबरी' में छोड़ दिये गए हों, किन्तु यह भी असंभव नहीं है कि उसके विवरणके आधार भूत 'रासो' के पाठ में उपर्युक्त में से कुछ न भी रहे हों। यह बात ठीक इसी प्रकार 'आईन-ए-अकबरी' की समकालीन रचना 'सुर्जनचरित महाकाव्य' में भी

1. 'आईन-ए-अकबरी', उपर्युक्त, पृ० ३०२।

दिखाई पड़ती है।[२] इसलिए यह विषय गम्भीरता पूर्वक विचारणीय है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना उपयोगी होगा कि 'आईन-ए-अकबरी' की रचना सं० १६५४-५५ में अकबर के राज्य के बयालीसवें वर्ष में समाप्त हुई थी,[३] और 'रासो' के प्राप्त सभी पाठों की प्रतियाँ उसके बाद की हैं: लघुतम की प्राचीनतम प्रति जो धारणोज (गुजरात) की है सं० १६६४ की है, लघु की प्राचीनतम प्रति जो बीकानेर की है जहाँगीर के समकालीन किसी भागचंद के लिए लिखी गई थी, मध्यम की प्राचीतम प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन की है और सं० १६६२ में लिखी गई थी, वृहत् की प्राचीनतम प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की है, जो सं १७४७ की है।

---

२. देखिए 'हिन्दी अनुशीलन' अक्तूबर-दिसंबर १६५८, पृ० १ पर 'सुर्जन चरित महाकाव्य और 'पृथ्वीराज रासो' शीर्षक प्रस्तुत लेखक का लेख।

३. 'आईन-ए-अकबरी', उपर्युक्त, (तृतीय भाग), पृ० ७१६।

हिंदी की रासो परम्परा का एक विस्मृत कवि जल्ह

लगभग बीस वर्ष हो रहे हैं, मुनि जिनविजय जी ने 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' नाम से कतिपय ऐसे प्रबन्धों का एक संकलन प्रकाशित किया जिनका सम्बंध मेरुतुङ्ग के 'प्रबंध-चिंतामणि' के प्रबंधों से था और इसमें उन्होंने पृथ्वीराज तथा जयचंद से सम्बद्ध प्रबंध भी दिए ।[1] इन दो प्रबंधों में चार ऐसे छंद आए हैं जिनमें से तीन नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में भी पाए जाते हैं। इसलिए इन प्रबन्धों से 'पृथ्वीराज रासो' पर एक नया प्रकाश पड़ा है, जिसके लिए हमें मुनि जी का उपकृत होना चाहिए।

इन छंदों के प्रमाण पर मुनि जी ने कहा है कि "चंद कवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसी ने पृथ्वीराज के कीर्त्तिकलाप का वर्णन करने के लिए देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो 'पृथ्वीराज़ रासो' नाम से प्रसिद्ध हुई।"[2]

उनके इस कथन के आधार तीन प्रतीत होते हैं।[3]

१. ये प्रबन्ध ऐसे प्रबन्ध-संग्रहों में पाये जाते हैं जिनकी रचना पन्द्रहवीं शती विक्रमीय में हुई होगी; एक संग्रह की प्रति सं० १५२८ की लिखी हुई है और दूसरे संग्रह की प्रति अंत में खंडित है, किंतु वह भी प्राचीन है।

२. इन प्रबन्धों में उद्धृत छंद चंद ने पृथ्वीराज तथा जयचंद को संबोधित करके कहे हैं।

३. इन छंदों की भाषा का रूप इतना प्राचीन है कि वह प्रकाशित 'पृथ्वीराज

---

१. 'पुरातन प्रबंध संग्रह' (सिंघी जैन ग्रंथ माला) सं० १९९२, पृ० ८६-९०।

२. वही, प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ९।

३. वही, वही, पृ० ८-१०।

रासो' के रूप से बहुत भिन्न है, वह देश्य प्राकृत है। इस सम्बन्ध में उन्होंने दोनों पाठों के भाषा-विषयक अंतर पर बल देते हुए यहाँ तक यह है कि कालान्तर में मूल रूप की भाषा में परिवर्तन हो गया और उसमें बहुत से प्रक्षेप मिल गए, तथापि भाषा की कसौटी पर कस कर कोई भाषा-शास्त्र-मर्मज्ञ विद्वान रचना के मूल भाग को शेष से अलग कर सकता है।

जहाँ तक मुनि जी के कथन के प्रथम आधार का प्रश्न है, वह मान्य प्रतीत होता है। सं० १५२८ की उक्त प्रति प्रतिलिपि मात्र है, जैसा उसकी पुष्पिका से प्रकट हैं, जो इस प्रकार है —[1]

संवत् १५२८ वर्षे मार्गसिर १४ सो में श्री कोरण्ट गच्छे श्री सावदेव सूरीणां शिष्येण मुनि गुण वर्द्धनेन लिपी कृतः। मु० उदयराज योग्यम्। श्री।

अर्थात् सं० १५२८ के मार्गसिर मास की १४ वीं तिथि को सोमवार के दिन कोरण्ट गच्छ के सावदेव सूरि के शिष्य मुनि गुणवर्द्धन ने मुनि उदयराज के लिए प्रतिलिपि की। इस की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि प्रति में अनेक स्थानों पर.........छोड़े हुए हैं,[2] जिनसे यह ज्ञात होता है, कि इस प्रति का आदर्श उन-उन स्थलों पर त्रुटित हो गया था।

पुनः सं० १५२८ वाली प्रति के अनेक प्रबंध—जिनमें से एक 'पृथ्वीराज प्रबंध' भी है—उक्त दूसरे प्रबंध-संग्रह में भी पाये जाते हैं और दोनों के पाठों में इस प्रकार का अंतर है कि वे एक दूसरे से लिए हुए नहीं, वरन् किसी अन्य पूर्वज प्रबंध-संग्रह से लिये गए होंगे। अतः वह पूर्वज प्रबंध-संग्रह सं० १५२८ की—एक संग्रह की—प्रति से यदि लगभग सौ वर्ष प्राचीन हो, तो कुछ आश्चर्य नही है।

जहाँ तक मुनि जी के कथन के दूसरे आधार का प्रश्न है वह अवश्य दृढ़ नहीं है, कारण यह है कि जिन चार छंदों के विषय में इन प्रबन्धों में कहा गया है कि वे चंद के द्वारा पृथ्वीराज तथा जयचंद को संबोधित कहे गए हैं, चंद के नहीं जल्ह के है, और इसका प्रमाण उक्त दो छंदों में ही विद्यमान है: दोनों में, जो निम्न-लिखित हैं, 'जल्ह' की छाप स्पष्ट रूप से आती है :

(१) त्रिण्हि लक्ख तुष्षार सबल पाखरिअइं जसुहय।
चऊदसइ मयमत्त दंति गज्जंति महामय।

1. पु० प्र० स०, पृ० १३६।
2. वही, प्रास्ताविक वक्तव्य,।

बीस लक्ख पायक्क सफर फारक्क धणुद्धर।
ल्हूसडु अरु बलुयान संख कु जाणइ तांह पर।
छत्तीस लक्ख नराहिवइ विहि विनडियो हो किम भयउ।
जइचंद न जाणउ 'जल्हु' कई गयउ कि मूउ कि धरि गयउ॥

(२) जइच्चंदु चक्कवई देव तुह दुसह पयाणउ।
धरणि धसवि उद्धसइ पडइ रायह भंगाणओ।
सेसु मणिहि संकियउ मुक्कु हय खरि सिरि खंडिओ।
तुट्टओ सो हर धवलु धूलि जसु चिय तणि मंडिओ।
उच्छलीउ रेणु जसग्गि गय सुकवि 'व(ज) ल्हु' सच्चउं चवइ।
वग्ग इंदु बि भुय जुअलि सहस नयण किण परि मिलइ॥

जो प्रबंध इस प्रकार प्रक्षिप्त हैं, उनके आधार पर यह कहना है कि चंद पृथ्वीराज का 'समकालीन और उसका सम्मानित एवं राज कवि था' ठीक नहीं माना जा सकता है।

जहाँ तक मुनि जी के तीसरे आधार का प्रश्न है, वह भी मान्य नहीं हो सकता है क्योंकि देश्य प्राकृत में हम्मीर के समय तक—और कदाचित् कुछ बाद तक भी—बराबर रचना होती रही है। 'प्राकृत पैङ्गलम्' में हम्मीर के सम्बन्ध के आठ छंद हैं। विद्यापति की 'कीर्तिलता' अवहट्ठ में है ही, जो कि देश्य प्राकृत का ही एक रूप है।

इसलिए मुनि जी के उपर्युक्त कथन से सहमत होना संभव नहीं है। किन्तु इससे चंद की रचनाओं का समय पन्द्रहवीं शती वि० से पूर्व का प्रमाणित हो गया यह एक महत्व की की बात हुई। हमारे बहुत से आधुनिक विद्वान् चंद की रचनाओं का समय सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी कहने लगे थे।[1] इस खोज से उनके कथनों का निराकरण हो गया।

साथ ही एक और महत्व की बात मिल गई, जिस पर मुनि जी का ध्यान बिलकुल नहीं गया कि जल्ह भी हिंदी का एक महत्वपूर्ण प्राचीन कवि रहा है जिसका समय चंद के आस-पास—या कम-से-कम उपर्युक्त पूर्वज प्रबन्ध-संग्रह के रचनाकाल पन्द्रवीं शती विक्रमीय से पूर्व का होना चाहिए।

---

१. यथा श्री मोतीलाल मेनारिया: 'राजस्थान का पिंगल साहित्य'।

अब हम एक अन्य जल्ह पर लौटते हैं जिसकी सूचना हमें और पहले से रही है ... राज रासो' के प्रकाशित संस्करण में जब चंद मुहम्मद गोरी का पृथ्वीराज के हाथों वध कराने की युक्ति सोचकर ग़जनी चलने को प्रस्तुत होता है, अपना अपूर्ण 'रासो' अपने पुत्र जल्ह के हाथों में सौंप देता है—

दूहा- ... आनि जोगिनिपुरह रासौ गुन दै पु... ।
पुच्छि त्रीय परिवार सब ...हौ तौ साधौं मुत्ति।।
(पृ० रा० रा० ६७. ५१)

कवित्त—... पुत्र कवि चंद ... सुन्दर सुज्जानं ।।
ज... ...ल्ह वलिभद्र कविय केहरि बष्षानं ।
बीर चंद अवधूत दसम नंदन गुनराजं ।
अप्प अप्प क्रमजोग बुद्धि भिन भिन करि काजं ।
जल्हन जिहाज गुन साज कवि चंद छंद सायर तिरन ।
अप्यौ सुहित्त रासो सरस चल्यौ अप्प राजन सरन ।।

दूहा— दहति पुत्र चंद कै सुन्दर रूप सुजान ।
बक्क जल्लह गुन बावरौ गुन समंद ससि भान ।।
आदि अंत वृत्त मन वृत्ति गुनी गुन राज ।
पुस्तक जल्हन हथ्थ दै चलि गज्जन न्रप काज ।।
(पृ० रा० रा० ६७.८३-८५)

और ग्रंथ के अंत में कहा जाता है कि इस ग्रंथ का उद्धार तदनंतर चंद-नंद (जल्ह) ने किया —

प्रथम वेद उद्धार बंभ मच्छह तन किन्नो ।
दुतिया बीर बाराह धरनि उद्धरि कस लिन्नो ।
कौनारक नभ देश धरा उद्धरि सुर सप्पिय ।
कूरम सूर नरेस हिंदुहद उद्धरि रप्पिय ।

रघुनाथ चरित हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिम ।
प्रथिराज सुजस कवि चंद कित चंदनंद उद्धरिय तिम ।।
(पृ० रा० रा० ६८.२२१)

किंतु इस सम्बंध में इतना और जान लेना चाहिए कि इस प्रसंग के [illegible] उद्धृत प्रथम तीन छंद 'पृथ्वीराज रासो' की चार या पाँच वाचनाओं में [illegible] एक अर्थात् बृहत् वाचना में पाए जाते हैं और ऊपर उद्धृत अंतिम छंद बृहत् वाचना तथा लघु वाचना की कुछ प्रतियों में पाया जाता है—यद्यपि लघु वाचना की इन प्रतियों में ५.८ 'चंद नंद' के स्थान पर 'चन्द्र सिंह' है—मध्यम तथा [illegible]तम वाचनाओं की प्रतियों में नहीं पाया जाता है। बृहत् तथा लघु वाचना [illegible] पाठ का आदान-प्रदान होने के प्रमाण मिले हैं, जिन[illegible] पुनः कभी प्रकाश डाला जावेगा। इसलिए यह असंभव नहीं है कि अंतिम उद्धृत छंद लघु वाचना के लिए लिखा गया हो और वह 'चन्द्र सिंह' के स्थान पर 'चन्द नंद' करके बृहद् वाचना में सम्मिलित कर लिया गया हो।

फिर भी ऐसा लगता है कि बृहत् वाचना के ऊपर प्रथम उद्धृत तीन छंद केवल किसी प्रसिद्ध जनश्रुति का ही उल्लेख नहीं करते, बल्कि जल्ह की किसी रचना के कुछ अंशों को 'पृथ्वीराज' रासो में समाविष्ट कर लेने के अनंतर उक्त विवरण 'पृथ्वीराज रासो' में बढ़ा दिया गया, जिससे जल्ह की उक्त रचना में भी उन छंदों को देख कर पाठकों को किसी प्रकार के संदेह का कारण न मिले, और इसका एक बड़ा प्रमाण यह है कि ऊपर जल्ह के जिन दो छंदों को 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' से उद्धृत किया गया है, उनमें से प्रथम 'रासो' की बृहत् वाचना में भी मिलता है—यद्यपि अन्य वाचनाओं में नहीं मिलता है, केवल 'जल्ह' के स्थान पर छाप 'चन्द' की कर दी गई है।

फलत: यह स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' की बृहत् वाचना में कम से कम जल्ह की किसी रचना के कुछ छंद रख लिये गए हैं। उनको अलग किस प्रकार किया जा सकता है, यह एक भिन्न समस्या है, जिस पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में उद्धृत जल्ह के उपर्युक्त छंदों की भाषा, शैली तथा छंद-योजना वही है जो उक्त 'संग्रह' में उद्धृत चंद के छंदों की है। और उक्त 'संग्रह' में संकलित 'जयचन्द-प्रबंध' जिसमें ऊपर उद्धृत जल्ह के दो छंद आते हैं, कुछ कथाएँ भी हैं। असंभव नहीं है कि चंद के 'पृथ्वीराज रासो' की भाँति ही जल्ह का कोई 'जयचंद रासो' भी रहा हो जो पीछे 'पृथ्वीराज रासो' में अन्तर्भुक्त कर लिया गया हो। इस विषय की खोज अपेक्षित है।

इधर एक महत्व की बात ज्ञात हुई है। राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में किसी जल्ह की एक अन्य रचना 'बुद्धिरासो' नाम की मिली है।[1]

---

१. 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' प्रथम भाग, पृ० ७८।

यह रचना दोहा, छप्पय, गाहा, पाधड़ी, मोतीदाम, अडिल्ल आदि छंदों में लिखी गई है और सब मिला कर १४० छंदों में समाप्त हुई है ।[१] 'पृथ्वीराज रासो' के भी प्रमुख छंद उपयुक्त ही हैं, इसलिए यह रचना छंद-योजना की दृष्टि से उसी परंपरा में है जिसमें 'पृथ्वीराज रासो' आता है ।

चंपावती नगरी का एक राजकुमार इसका नायक है और जलधितरंगिनी नाम की एक रूपवती स्त्री इसकी नायिका है । राजकुमार जलधितरंगिनी के साथ समुद्र के किनारे किसी निर्जन स्थान में आ कर रहने लगता है । किंतु किसी कार्य-वश वह वहाँ से एक मास के लिए कह कर चला जाता है । राजकुमार अवधि बीतने पर भी नहीं लौटता है तो विरहिणी जलधितरंगिनी संसार से विरक्त हो जाती है और अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण उतार फेंकती है । इस पर उसकी माँ देव-दुर्लभ मानव-देह की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उसे संसार के विलास-वैभव की ओर आकृष्ट करना चाहती है । इतने में राजकुमार वापस आ पहुँचता है । दोनों-नायक तथा नायिका का पुनर्मिलन हो जाता है और तदनंतर वे आनन्द-उत्साह के साथ अपने दिन व्यतीत करते हैं ।[२] इस रचना में भी 'जल्ह' नाम आता है[३]—

इति प्रतिवाद सुवेस रस वर्ण कियो कवि जल्ह ।
चंपावति नयरी सुथल कही मनोहर गल्ह ॥१४०॥

जो आदि और अंत की पंक्तियाँ खोज-विवरण में उद्धृत हुई हैं, उनकी भाषा अवश्य ही जल्ह के उन छंदों की भाषा से भिन्न है जो 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संकलित हैं, किन्तु उस छंद की भाषा से बहुत भिन्न नहीं है जो 'पृथ्वीराज रासो' में मिलता है । यह अवश्य है कि 'पृथ्वीराज रासो' वाला उक्त छंद वीर रस विषयक है, इसलिए उसकी शैली एक है, और 'बुद्धि रासो' के छंद शृङ्गार रस विषयक हैं, इसलिए इनकी शैली भिन्न है । रीतिकाल के अनेक कवियों ने शृङ्गार के साथ वीररस की रचनाएँ की हैं, किन्तु दोनों की शैलियों में प्रायः अन्तर मिलता है । इसलिए यदि 'बुद्धि रासो' भी उसी जल्ह की रचना हो जिसके 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में उद्धृत' उक्त दो छंद हैं, तो आश्चर्य न होना चाहिए ।

'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के उक्त छंदों की भाषा और 'पृथ्वीराज रासो' तथ 'बुद्धि रासो' के छंदों की भाषा में जो अंतर मिलता है, उसके सम्बंध में एक बात

---

१. वही ।

२. वही ।

३. वही ।

यह भी विचारणीय है कि 'प्रबन्ध संग्रह' के लेखक जैन विद्वान् थे, और जैन रचनाएँ १४०० वि० तक प्रायः देश्य प्राकृत में ही लिखी गई हैं, पूर्णरूप से उस भाषा में कदाचित् ही कोई रचना लिखी गई मिलेगी जो आधुनिक आर्य भाषा कोटि में आती है, इसलिए यदि जैन विद्वानों के हाथ में आधुनिक आर्य भाषा की इन रचनाओं में भी जैन अपभ्रंश की छाया आ गई हो तो असंभव नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा हुआ ही होगा। मैं केवल एक संभावना की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, जिस पर विचार करने और खोज करने की आवश्यकता है।

यह जल्ह कौन था, इस सम्बन्ध में हमें उक्त खोज विवरण से कुछ अधिक नहीं ज्ञात होता है। किंतु उक्त खोज-विवरण के संपादक श्री मोतीलाल मेनारिया ने स्वरचित 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में लिखा है कि ग्रंथ की रचना-शैली से जल्ह कोई जैन कवि प्रतीत होता है। उन्होंने रचना से इस ग्रंथ में उदाहरण के लिए जो पंक्तियाँ दी हैं, वे निम्नलिखित हैं[1] —

घरि वरि कुसुम बास अरिव्यंदा। अलि लुट्टहि अहिनिशि तजि न्यंदा॥
जलधितरंगिनि की नव नन्दा। किय षोडस जनु पूरण चन्दा॥
चन्द मुखी मुख चन्द कियं। चखि कज्जल अंबर हार लियं॥
घण घंटीय छिद्र (छुद्र) नितंब भरे। मयमत्त सधा मन मच्छ करे॥

इन पंक्तियों की रचना-शैली में तो कोई बात ऐसी नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि इनका कवि जैन था। जो कथा 'बुद्धिरासो' में कही गई है, वह जैन कथा नहीं है, न जैन कथाओं की भाँति उसमें संसार से विरक्ति के लिए कोई प्रेरणा है। वह तो एक नितान्त शुद्ध प्रेम-कथा है। जो प्रारम्भ खोज विवरण में उद्धृत है, उसमें जैन नमस्क्रिया भी नहीं है। इसलिये मेनारिया जी का यह अनुमान मान्य नहीं प्रतीत होता है।

फिर उन्होंने अपने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में लिखा है कि इस कवि का आविर्भाव काल सं० १६२५ है।[2] पता नहीं किस आधार पर उन्होंने यह लिखा है। क्या 'बुद्धिरासो' की प्राप्त प्रति सं० १७०४ की है, इसी आधार पर उन्होंने यह कहा है? इसी प्रकार के तर्कों के आधार पर 'बीसलदेव रास' को भी उन्होंने एक

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १२१।

२ वही।

जैन कवि की सोलहवीं शती की रचना कहा है ।[3] अपने 'बीसलदेव रास' के संस्करण में मैंने यह दिखाया है कि उसके पाठ के इतिहास को देखते हुए यह मत किस प्रकार मान्य नहीं है कि वह सोलहवीं शती की रचना है—उसे तो अनुमानतः चौदहवीं शती के अन्त की रचना होना चाहिए । उसकी कथा भी कोई जैन कथा नहीं है, उसमें भी संसार से विरक्ति की कोई प्रेरणा नहीं है और न जैन नमस्क्रिया ही ग्रंन्थारंभ में आ कहीं भी पड़ती है । फलतः 'बीसलदेव रास' और 'बुद्धि रासो' को जैन कवियों की रचनाएँ कहना निराधार प्रतीत होता है । इधर अपने साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में भाँति-भाँति की खींचतान होती प्रतीत होने लगी है, जिससे हमें सतर्कता-पूर्वक बचना चाहिए ।

परिणामतः यद्यपि यह प्रमाणित नहीं है कि 'बुद्धिरासो' का रचयिता जल्ह भी वही है, जो 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में सम्मिलित उक्त दो छंदों का है, किन्तु यह असम्भव नहीं है कि दोनो एक ही हों, तथा उसने उसी प्रकार 'जयचंद रासो' लिखा हो जिस प्रकार चंद ने 'पृथ्वीराज रासो' लिखा और पीछे उस 'जयचंद रासो' या उसके किसी अंश को 'पृथ्वीराज रासो' में यह कह कर अन्तर्भुक्त कर लिया गया हो कि जल्ह चंद का पुत्र था और उसके देहावसान के अनंतर उसने अपूर्ण 'पृथ्वीराज-रासो' को पूर्ण कर उसका उद्धार किया । यह कहना अनावश्यक होगा कि ये परिणाम बहुत कुछ अनुमानाश्रित हैं, और इनके सम्बंध में अधिक से अधिक गवेषणा तथा अन्वेषण की आवश्यकता है, किन्तु यह विश्वास है कि उसका परिणाम लाभप्रद होगा ।

---

३. वही, पृ० ८८-८९ ।

शुद्धि-पत्र

[पाद-टिप्पणियों की पंक्तियों के पूर्व पा० संकेत दिया गया है]।

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३.१३	अधिकांश	अधिकांश	३०.१२	खंधय	खंधय
५.२६	लक्ष्ण	लक्षण	३०.१५	अकष्टुप	अनुष्टुप
५.२६	'जाति समुच्चय'	'वृत्त जाति	३०.२०	मोती दास	मोतीदाम
		समुच्चय'	३०.२१	यमरावलि	भमरावलि
६.२३	जिणंद	जिणंद	३३.३	वैविठ्य	वैविध्य
१२.५	विद्याभवन है	विद्याभवन,	३३.२३	रासषि	रासउ
१३.पा०३	का: उत्तर-	का लेख जो	३४.१	सुझाव	कुछ सुझाव
	भारती	आगेआया है	३५.१५	मइएणवो	महण्णवो
१४.१२	पृथ्वीराज	पृथ्वीराज और	३५.२२	वर	घर
		जयचंद	३५.२६	संशोधन	संबोधन
१४.२८	विक्रमीत	विक्रमीय	३६.४	पंडित	पंडित्त
१५.५	कामदाँ	कामराँ	३६.८	मणुपजंमि	मणुयजंमि
१५.२४	सविस्तार रूप में	सविस्तार	३८.५	उद्भन्न	उद्भिन्न
१५.पा० २	७०	८०	४०.७	पडिल्यि	पडिल्लिय
१५.पा० ४	११२	११८	४४.१३	( )	(२१)
१५.पा० ५	रचयिता	रचयिता	४६.१६	द्वित्य	द्वित्त्व
१६.२०	५	२	४७.१०	नागरिका	नागरिका:
१६.पा० ५	अंक २१	अंक ३	४६.२६	कज्जिलजहि	कलिज्जहि
१८.११	२००४	वर्ष ४	५२.३	उब्बिविर	उव्विविर
१८.११	१२२५	१२२	५४.१८,१६	प्रयुक्त	प्रमुक्त
२०.१२	ओर	और	५४.२०	पमुक्किउ	पमुक्किउ
२२.१३	रचना	रचनाओं	५७.४	पहिय	पहिय पयहि
२२.२४	वर्णन	वर्णन	५८.११	सिज्झूइ	सिज्झइ
२३.१२	रासो	रासउ	६०.३	क्रिया	क्रिया
२३.२०	कथा	कन्था	६१.६	उट्ठिउ	उड्डिउ
२४.१७	हिन्दी में इसका	हिन्दी का एक	६४.७	पक्ख	पक्खर
२५.२२	कृतियों में	कृतियों के	६४.२२	खुरसगाक	[illegible]
२६.१४	प्रभाग	प्रभाव	६६.१६	मानमों को	मानमों के
२६.१४	के दास	के दारा	६६.२४	काख	का र व

पृ. पं.	अशुद्ध	शुद्ध
६८.१०	क	का
६९.८	(ग)	(घ)
७२.५	सम्बन्ध	संवाद
७२.७	उद्धृत	उद्धत
७४.२६,२७	उज्जवल	उज्ज्वल
७४.पा.१	मका में	भूमिका में
७८.१५	जयचंद	मुकुंद देव
७९.२५	तेरह	सामंत निघट तेरह
८०.४	इक	इक इक
८४.१६	बीस	बीस गनिंद
९१.पा०६	प्रकाशित	प्रकाशित 'पुरातन प्रबंध संग्रह चंद बरदाई और जल्ह का समय'
९२.पा०३	कवि ६, ६	कवि० ५, ६
९२.पा०८	महण्णव	महण्णवो
९३.पा०५	५२ ६१	५२–६१
९४.१२	जयचन्द	नय चन्द
९६.१७	नाहरः परिहा	नाहर परिहार
९७.५	जोट०	त्रोट०
१०३.१४	चौलुक्यः- गुर्जर नरेश	चौलुक्य गुर्जर-नरेशः
१०३.३	तथा पद्ध० १४,	तथा १४.
१०४.२	पकार	प्रकार
१०४.४	सर्ग ११३६	सर्ग ११ प्रारंभ
१०४.पा०४	अ.१, कवि२३	अ.३, कवि.१
१०५.१३	समसिंमह	समर सिंह
१०५.पा०२	प०	पृ०
१०५.पा०७	१५,कवि.२	१६. कवि०१
१०५.पा०७	१७,कवि.९	१७. कवि०९
१०५.पा०८	१६	१०
१०५.पा०८	१६,कवि.२	१६. कवि०२
१०६.९	मलख	सल ख
१०६.१६	पृथ्वी	पृथ्वीराज

पृ. पं.	अशुद्ध	शुद्ध
१०६.पा०२	२ कवि.५	२. कवि०५
१०६.पा०२	३ कवि.१	४. कवि०१
१०७.११	साहब	साहाब
१०७.पा०४	२९५,९७	२९५–२९७
११०.५	विद्यपति	विद्यापति
१११.१०	काह उदधि	कहि उदधि
	[illegible]	[illegible]
११५.पा०३	प्रचारिणी	नागरी प्रचारिणी
	'छल से।'	ने कहा, 'छल
११६.९	जैसे ही घोड़ा से।'	जैसे ही
	ने कहा.	घोड़ा
११९.२१	चाहिए।	चाहिए।'
१२४.१५	हैं,	हैं।
१२७.७	—२(९२-२-३)	[न होना चाहिए]
१२८.१९	इन	इनकी
१३०.३		१-२
१३०.३	सन्निश्चित	सन्निश्चित
१३१.२३	ऐतिहासिक	ऐतिहासिक
१३३.६	कुड	फुड
१३८.७	उनमें	उनने
१३९.२१	प्रकार	प्रकाश
१४१.१६	वृक्ष	वृष
१४२.४	चरणों	चारणों
१४२.२०	संदेश	संदेह
१४४.पा०१	प्रस्तुत	प्रस्तुत
१४६.१९	जाय	आय
१४९.२६	१०,००	१०,०००
१५०.१६	पृथ्वीरा	पृथ्वीराज
१५४.१४	बाग्दान	वाग्दान
१५६.पा०४	प्रचारिणी	प्रचारिणी
१५७.५	सिंघ	सिंघ
१६१.२६	११,००	११,०००
१६६.२	यह	कहा
१६८.१५	बक्क	इक